अध्यात्म चेतना का ध्रुव केन्द्र
देवात्मा हिमालय
—श्रीराम शर्मा आचार्य

# अध्यात्म चेतना का ध्रुव केन्द्र देवात्मा हिमालय

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
डॉ० प्रणव पण्ड्या (एम.डी.)

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : १२.०० रुपये

# विषय-सूची

# दिव्य चेतना का केन्द्र-हिमालय का हृदय

पदार्थों और प्राणियों के परमाणुओं–जीवकोषों में मध्यवर्ती नाभिक "न्यूक्लियस" होते हैं। उन्हीं को शक्ति स्रोत कहा गया है और घिरे हुए परिकर को उसी उदगम से सामर्थ्य मिलती है तथा अवयवों की सक्रियता बनी रहती है। यह घिरा हुआ परिकर गोल भी हो सकता है और चपटा अण्डाकार भी। यह संरचना और परिस्थितियों पर निर्भर है।

पृथ्वी का नाभिक उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणी ध्रुव की परिधि में मध्य स्थान पर है। उसके दोनों सिरे अनेकानेक विचित्रताओं का परिचय देते हैं। उत्तरी ध्रुव लोक–लोकान्तरों से कास्मिक–ब्रह्माण्डीय किरणों को खींचता है। जितनी पृथ्वी को आवश्यकता है उतनी ही अवशोषित करती है और शेष को यह नाभिक दक्षिणी ध्रुव मार्ग से अन्तरिक्ष में निःसृत कर देता है। इन दोनों छिद्रों का आवरण मोटी हिम परत से घिरा रहता है। उन सिरों को सुदृढ़ रक्षाकवच एवं भण्डारण में प्रयुक्त होने वाली तिजोरी की उपमा दी जा सकती है। प्राणियों के शरीरों और पदार्थ परमाणुओं में भी यही व्यवस्था देखी जाती है। अपने सौरमण्डल का "नाभिक" सूर्य है, अन्य ग्रह उसी की प्रेरणा से प्रेरित होकर अपनी–अपनी धुरियों और कक्षाओं में भ्रमण करते हैं।

नाभिक की सत्ता, महत्ता और स्थिति के बारे में इतना समझ लेने के उपरान्त प्रकृति से आगे बढ़कर चेतना क्षेत्र पर विचार करना चाहिए। उसका भी नाभिक होता है। ब्रह्माण्डीय चेतना का ध्रुव केन्द्र कहाँ हो सकता है, इसके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में से अधिकांश का प्रतिपादन ध्रुव तारे के सम्बन्ध में है। वह दूर तो है ही, स्थिर भी प्रतीत होता है। उसका स्थान ब्रह्माण्ड का मध्यवर्ती माना जाता रहा है। अभी भी उसमें संदेह

भर किया जाता रहा है। किसी ने प्रत्यक्ष खण्डन करने का साहस नहीं किया।

पृथ्वी का, पदार्थ सम्पदा का, नाभिक जिस प्रकार ध्रुव केन्द्र है। उसी प्रकार चेतना प्रवाह का मध्यबिन्दु नाभिक—हिमालय के उस विशेष क्षेत्र को माना गया है, जिसे हिमालय का हृदय कहते हैं। भौगोलिक दृष्टि से उसे उत्तराखण्ड से लेकर कैलाश पर्वत तक बिखरा हुआ माना जा सकता है। इसका प्रमाण यह है कि देवताओं, यक्ष—गन्धर्वों, सिद्ध पुरुषों का निवास इसी क्षेत्र में पाया जाता रहा है। इतिहास—पुराणों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र को देव भूमि कहा और स्वर्गवत् माना जाता रहा है। सामान्य वन, पर्वतों, भूखण्डों की तुलना में इस क्षेत्र की चेतनात्मक महत्ता विशेष रूप से आँकी गई है। उच्चस्तरीय चेतनशक्तियाँ इस क्षेत्र में बहुलतापूर्वक पायी जाती हैं। आध्यात्मिक शोधों—साधनाओं के लिए, सूक्ष्म शरीरों को विशिष्ट स्थिति में बनाये रखने के लिए वह विशेष रूप से उपयुक्त है। उस क्षेत्र में सूक्ष्म शरीर इस स्थिति में बने रह सकते हैं, जो यथा अवसर आवश्यकतानुसार अपने को स्थूल शरीर में भी परिणत कर सकें और उस स्तर के लोगों के साथ विचार विनिमय कर सकें तथा एक दूसरे को सहयोग देकर किसी बड़ी योजना को कार्यान्वित भी कर सकें।

सिद्ध पुरुषों के कई स्तर हैं, जिनमें यक्ष, गन्धर्व प्रमुख हैं। खलनायकों की भूमिका निभाने वालों को दैत्य या भैरव कहते हैं। उनकी प्रकृति तोड़—फोड़ में अधिक होती है। यक्ष राजर्षि स्तर के होते हैं तथा गन्धर्व कलाकार स्तर के। सिद्ध पुरुष तपस्वी योगी जनों की ही एक विकसित योनि है। भूलोक की मानवी समस्याओं को सुलझाने में प्रायः सिद्ध पुरुषों का ही बढ़ा—चढ़ा योगदान रहता है। इसलिए उनकी समीपता, सहायता के लिए ऐसी अभ्यर्थनाएँ की जाती हैं, जो उन्हें प्रभावित या आकर्षित कर सकें। उनका जिन्हें विशेष अनुग्रह प्राप्त होने लगता है, वे उन्हें "देव"

भी कहने लगते हैं। यों ईश्वर की अनंत शक्तियों को अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण "देव" नाम से भी जाना जाता है। वे अदृश्य होती हैं। फिर भी ध्यान साधने के लिए, सम्पर्क सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन्हें आलंकारिक रूप से किसी आकार की मान्यता दी जाती है। आकार के बिना न तो ध्यान बन सकता है और न तादात्म्य स्थापित हो सकता है। इसलिए निराकार की अभ्यर्थना के लिए उनके साकार रूपों की प्रतिष्ठापना की गई है। पूजा प्रयोजनों में, देवालय स्थापना में इन्हीं निरूपित प्रतिमाओं का प्रयोग होता है। इनकी समर्थता में दैवी शक्ति के अतिरिक्त साधक की श्रद्धा सघनता का भी भारी महत्त्व है। श्रद्धा के बिना दैवी विभूतियों को आकर्षित-स्थापित नहीं किया जा सकता। रामचरित मानस के प्रणेता ने तो श्रद्धा-विश्वास को भवानी-शंकर की उपमा दी है। वह बहुत हद तक सही भी है। झाड़ी का भूत और रस्सी का साँप बनते और उस मान्यता के अनुरूप भयानक प्रतिफल प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार उच्चस्तरीय श्रद्धा भी देव दर्शन कराती हैं। एकलव्य के मिट्टी से बनाये गये द्रोणाचार्य, मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली के उदाहरण ऐसे ही हैं, जिनमें जड़ प्रतिमाओं ने समर्थ सचेतन जैसी भूमिकाएँ सम्पन्न कीं। फिर सचेतन को देवता या सिद्ध-पुरुष स्तर तक पहुँचने की सम्भावना सुनिश्चित होने में संदेह क्यों किया जाए ?

यह चर्चा भावना के अनुरूप देव पुरुषों की, सिद्ध पुरुषों की सत्ता विनिर्मित करने संबंधी हुई। मुख्य प्रश्न यह है कि श्रद्धा के अभाव में भी देव सत्ताएँ अपने क्रिया-कलाप जारी रख सकती हैं या नहीं। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि वे अपनी इच्छानुसार अभीष्ट गतिविधियाँ बिना किसी रोक-टोक के क्रियाशील रखे रह सकती हैं। आवश्यकतानुसार वे अपने सूक्ष्म शरीरों को स्थूल शरीरों में भी बदलती रहती हैं। मनुष्यों के साथ सम्पर्क साधने में उन्हें विशेषतया प्रकट स्वरूप

बनाना पड़ता है; पर वह कुछ समय के लिए ही होता है। उनकी स्वाभाविक स्थिति सूक्ष्म शरीर में ही बने रहने की होती है। इसलिए निश्चित प्रयोजन पूरा करने के उपरान्त वे पुनः अपनी स्वाभाविक स्थिति को अपना लेती हैं, सूक्ष्मता की स्थिति में चली जाती हैं। स्थूल शरीर का कलेवर बनाकर रहना उन्हें असुविधाजनक प्रतीत होता है। कारण कि उसके लिए उन्हें ऋतु प्रभाव से बचने, आहार, जल आदि की व्यवस्था जुटाने के लिए विशेष स्तर का प्रबंध करना पड़ता है। इस झंझट भरी व्यवस्था को वे थोड़े समय के लिए स्वीकारते हैं और अभीष्ट की पूर्ति के उपरान्त बिना झंझट वाली सूक्ष्म स्थिति में चले जाते हैं।

मरने के उपरान्त—नया जन्म मिलने से पूर्व जीवधारी को कुछ समय सूक्ष्म शरीर में रहना पड़ता है। उनमें से जो अशान्त होते हैं, उन्हें प्रेत और जो निर्मल होते हैं उन्हें पितर प्रकृति का निस्पृह उदारचेता, सहज सेवा, सहायता में रुचि लेते हुए देखा गया है। मरणोपरान्त की थकान दूर करने के उपरान्त संचित संस्कारों के अनुरूप उन्हें जन्म धारण करने के लिए उपयुक्त वातावरण तलाशना पड़ता है, इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। वह समय भी सूक्ष्म शरीर में रहते हुए ही व्यतीत करना पड़ता है। ऐसी आत्माएँ अपने मित्रों, शत्रुओं—परिवारीजनों एवं परिचितों के मध्य ही अपने अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं। प्रेतों की अशान्ति, सम्बद्ध लोगों को भी हैरान करती हैं। पितर वे होते हैं जिनका जीवन सज्जनता के सतोगुणी वातावरण में बीता है। वे स्वभावतः सेवा, सहायता में रुचि लेते हैं। उनकी सीमित शक्ति अपनों—परायों को यथा संभव सहायता पहुँचाती रहती हैं, इसके लिए विशेष अनुरोध नहीं करना पड़ता। जरूरतमन्दों की सहायता करना उनका सहज स्वभाव होता है। कितनी ही घटनाएँ ऐसी सामने आती रहती हैं, जिनमें दैवी शक्तियों ने कठिन समय में भारी सहायता की और संकटग्रस्तों की चमत्कारी सहायता करके उन्हें उबारा।

सिद्ध पुरुष जीवन मुक्त स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि उनकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा एक हो जाती है। वे स्वेच्छा से संकल्प पूर्वक कुछ काम नहीं करते। दैवी प्रेरणाएँ ही उनसे लोकहित के लिए विविध कार्य कराती रहती है। जिस प्रकार काया में संव्याप्त निराकार जीवात्मा अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य हाथ, पैर, वाणी आदि विभिन्न अवयवों के माध्यम से सम्पन्न कराती रहती है। उसी प्रकार दैवी प्रेरणा सिद्ध पुरुषों को कठपुतली की तरह नचाती और सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनसे विविध कार्य कराती हैं। इस प्रकार निराकार सत्ता के साकार प्रयोजन सिद्ध पुरुषों के माध्यम से पूरे होते रहे हैं। ऐसे सिद्ध पुरुषों को देवात्मा भी कहते हैं। वे शरीर के बन्धनों में बँधे हुए नहीं होते। शरीर त्यागने के बाद भी उनका सूक्ष्म शरीर प्रायः उसी आकृति–प्रकृति का बना रहता है। उनकी स्थिति उनके संकल्पों के ऊपर निर्भर रहती है। अस्तु, समयानुसार वे उसमें परिवर्तन भी कर लेते हैं। जब उनसे दिव्य चेतना कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कराना चाहती है, तो नियत समय पर, नियत स्थान पर, नियत साधनों के साथ उन्हें जन्म–धारण करने के लिए निर्देश करती है। ऐसे लोग महामानव स्तर के होते हैं। बचपन का दबाव उनपर अधिक समय तक नहीं रहता। वे लम्बी अवधि तक अबोध नहीं बने रहते। किशोरावस्था से ही उनकी विशिष्ट गतिविधियाँ आरम्भ हो जाती हैं। दिग्भ्रान्त नहीं होना पड़ता। वातावरण के प्रभाव से वे प्रभावित नहीं होते, वरन् अपनी आत्मिक प्रखरता के आधार पर वातावरण को प्रभावित करते हैं। परिस्थितियाँ उनके मार्ग में बाधक नहीं बनतीं, वरन् वे परिस्थितियों के प्रतिकूल होते हुए भी उन्हें अनुकूलता के ढाँचे में ढालते हैं। हवा के साथ सूखे पत्तों की तरह उड़ते नहीं फिरते, वरन् पानी की धार चीरती हुई उलटी दिशा में चल सकने वाली मछली जैसा अपने पुरुषार्थ का परिचय देते हैं। वे आदर्शवादी जीवन जीते और पीछे वालों के लिए अनुकरणीय, अविस्मरणीय, अभिनन्दनीय उदाहरण छोड़ते हैं।

सिद्ध पुरुष यों संसार के किसी भी भाग में पाये जा सकते हैं, पृथ्वी के हर खण्ड में स्थूल शरीरधारी महामानव और सूक्ष्म शरीर द्वारा अपनी गतिविधियाँ कार्यान्वित करने वाले सिद्ध पुरुष प्रकट होते रहे हैं। इस दृष्टि से कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसे ऊसर कहा जा सके। फिर भी विशेषता की विपुलता किसी क्षेत्र विशेष के साथ जुड़ी रहती देखी जाती है। वृक्ष, वनस्पति, पशु–पक्षी, जीव–जन्तु हर क्षेत्र में अपनी–अपनी विशेषता, भिन्नता लिये हुए जन्मते हैं। सर्वत्र एक जैसा उत्पादन नहीं होता। इसी प्रकार सिद्ध पुरुषों की उत्कृष्टता एवं बहुलता हिमालय के ध्रुव केन्द्र के इर्द–गिर्द ही पाई जाती है। सफेद रीछ, बर्फीले प्रदेशों में ही पाया जाता है। अनेक विशिष्ट जड़ी बूटियाँ विशेष क्षेत्रों में ही उपजती और उसी परिधि में जीवित रहती हैं। सोमवल्ली, संजीवनी बूटी, अरुन्धती, ब्रह्मकमल जैसी वनस्पतियाँ हिमालय के एक विशेष क्षेत्र में ही पाई जाती हैं। यदि उन्हें अन्यत्र कहीं लगाया जाए तो उनका जीवित रहना संभव नहीं। इसी प्रकार पृथ्वी ध्रुव के केन्द्र हिमालय के एक विशेष भाग में ही उच्चस्तरीय दिव्य–आत्माओं का बाहुल्य पाया जाता है। उन्हें अन्य भूखण्ड रास नहीं आते। जैसा पोषण वातावरण से मिलना चाहिए वैसा अन्यत्र से नहीं मिलता। इसलिए अपनी सुविधा तथा अपने स्तर की अन्य आत्माओं की उपस्थिति देखते हुए उनका निवास इसी क्षेत्र में रहता है। वे समस्त क्षेत्रों से, लोक–लोकान्तरों से यहाँ रह कर जिस सुविधा के साथ सम्पर्क बनाते रहते हैं, वैसी सुविधा उन्हें अन्यत्र नहीं मिलती। यही कारण है कि हिमालय का देवात्मा भाग एक प्रकार से सिद्ध क्षेत्र बन गया है।

# देवात्मा हिमालय क्षेत्र की विशिष्टिताएँ

सौरमण्डल का पृथ्वी पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इस जानकारी से किस प्रकार लाभान्वित हुआ जा सकता है ? अनिष्टों की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में किस प्रकार सुरक्षात्मक कदम उठाए जा सकते हैं ? इसके लिए साधन सम्पन्न वेधशालाएँ पृथ्वी के अत्यन्त सम्वेदनशील क्षेत्रों में बनाई गई हैं। उनसे जो जानकारियाँ मिली हैं, वे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि उन्हें सामान्य क्षेत्रों में सुविधाजनक स्थानों में बनाया गया होता तो वह लाभ न मिलता जो प्रस्तुत संवेदनशील क्षेत्रों में मिल रहा है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवक्षेत्रों में भी अनेक प्रकार की शोधों के प्रयास चल रहे हैं, वे अत्यन्त खर्चीले हैं और जोखिम भरे भी। फिर भी क्षेत्रीय संवेदनशीलता का लोभ संवरण नहीं किया जा सका और जहाँ-तहाँ वैसी प्रयोगशालाएँ बनाने का विचार नहीं किया; क्योंकि स्थान विशेष की संवेदनशीलता का लाभ अन्यत्र नहीं उठाया जा सकता।

खग्रास सूर्य ग्रहणों के समय भी उसके फोटो लेने और प्रभाव जाँचने के लिए भी वैज्ञानिक किन्हीं ऐसे स्थानों पर जाते हैं, जहाँ से दृश्य की छवि सीधी देखी जा सकती है। ऐसे स्थान ही उस शोध प्रयोजन की पूर्ति भली प्रकार करते हैं।

मिस्र के पिरामिड मात्र कब्रें नहीं हैं, उन्हें धरती के एक विशेष क्षेत्र में बनाया गया है, जहाँ से सौरमण्डल की, ग्रहों की, गतिक भिन्नता की नाप-तोल भली प्रकार हो सके, उनकी बदलती परिस्थितियों का लेखा-जोखा ठीक प्रकार लिया जा सके। वे सूक्ष्म गणित पर आधारित विशेष प्रकार की वेधशालाएँ हैं। उपयुक्त स्थान तलाश करके उन्हें विशेष

कठिनाईयों के साथ बनाया गया है। यदि भूमि का महत्त्व उतना न रहा होता, तो सम्भवतः वे पिरामिड कहीं ऐसे स्थान पर बनाए गए होते जहाँ आवश्यक वस्तुएँ सुविधापूर्वक मिल सकी होतीं और कारीगरों का निवास–निर्वाह अपेक्षाकृत सरल होता। पिरामिडों के स्थान चयन में सौर मंडल के विभिन्न प्रभावों का पृथ्वी पर अवतरण ही प्रमुख कारण रहा है।

एशिया के सोवियत क्षेत्र में कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ अधिकांश लोग शतायु या उससे भी अधिक समय तक जीवित रहने वाले पाये जाते हैं। इन लोगों का आहार–विहार अन्यत्र रहने वालों की तरह सामान्य ही होता है; किन्तु फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि उन्हीं क्षेत्रों में दीर्घजीवी क्यों पाए जाते हैं ? इसका सम्बन्ध भी उन प्रदेशों पर अन्तरिक्षीय विशेष किरणों का बरसना माना जाता है। इसे जलवायु की, आहार–विहार की विशेषता नहीं माना जाता, वरन् उस क्षेत्र में पृथ्वी और आकाश के मिलन का अद्‌भुत संयोग कहा जाता है।

धरातल का सामान्य वातावरण ऋतुओं के प्रभाव से प्रभावित होता रहता है, पर विशेष क्षेत्र ऐसे भी हैं, जिनकी परिस्थितियाँ धरती और आकाश के बीच विशेष प्रकार के सम्बन्ध पर निर्भर रहती हैं। उन क्षेत्रों की उर्वरता, खनिज सम्पदा, प्राणियों का स्वभाव एवं पौरुष असामान्य रूप से घटा–बढ़ा पाया जाता है। इसे भूगोल एवं खगोल का विशिष्ट प्रत्यावर्तन कहा जा सकता है। हिमालय का वह भाग जिसे देवात्मा कहते हैं, ऐसी ही विशेषताओं से सम्पन्न है। उस पर भू–चुम्बक एवम् अन्तरिक्षीय तरंग वर्षण का विशेष प्रभाव देखा गया है। हिमालय बहुत विस्तृत भी है और ऊँचा–नीचा भी, उसमें कई पठार भी हैं; किन्तु जो विशेषताएँ देवात्मा क्षेत्र में पाई गई हैं, वे एक नहीं अनेकों हैं। वे विशेषताएँ अन्यत्र नहीं हैं। इसी कारण उस परिधि को सिद्ध पुरुषों ने अपने लिए क्रिया क्षेत्र चुना है।

रेडियो, टेलीविजन के प्रसारण के लिए ऊँचे–खम्भे खड़े किए जाते

हैं। यह कार्य धरातल पर कारखाना बनाकर पूरा नहीं किया जा सकता। कारण कि धरातल पर से जो तरंगें निःसृत होती हैं, वे प्रायः समानान्तर ऊँचाई पर ही चलती हैं, उन्हें ऊँचा फेंकना हो तो विशेष शक्ति का नियोजन करना पड़ता है। किन्तु ऊँचे खम्भे के सिरे पर जो तरंगें फेंकी जाती हैं, वे निर्वाध रूप से लम्बी दूरी पार करती हुई विस्तृत क्षेत्र में बिखर जाती हैं। हिमालय की ऐसी सन्तुलित ऊँचाई देवात्मा क्षेत्र में ही पड़ती है, जहाँ से विश्व को, क्षेत्र विशेष को प्रभावित किया जा सके। वहाँ तक विशेष संदेश पहुँचाए जा सकें। सिद्ध पुरुष मात्र अपनी ही निजी साधनाओं तक सीमित नहीं रहते, उन्हें धरातल के विभिन्न क्षेत्रों को–वहाँ से विशेष व्यक्तियों को सन्देश पहुँचाने पड़ते हैं। इसके लिए उनका आसन ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जो इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिए सही और सन्तुलित हो। समुद्रों में खड़े किए गए प्रकाश स्तम्भ भी ऐसी ही ऊँचाई तक उठाए जाते हैं, जहाँ से उनमें जलने वाला प्रकाश जलयानों तक पहुँचने में भली प्रकार समर्थ हो। यदि यह स्तम्भ अनुपात में नीचे या ऊँचे हो, तो निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति न हो सकेगी। सिद्ध पुरुषों को प्रसारण भी करना पड़ता है और प्रकाश स्तम्भों की भूमिका भी निभानी पड़ती है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उनने देवात्मा क्षेत्र को अपने लिए चुना है। यों सुविस्तृत हिमालय क्षेत्र में अनेक स्थान उससे ऊँचे भी हैं और नीचे भी। सुविधा–साधनों की दृष्टि से हिमालय के कई क्षेत्र अधिक पसंद किए जाने योग्य हैं, पर उनकी उपयोगिता इसलिए नहीं समझी गयी कि वहाँ से प्रसारण और संग्रहण का तारतम्य सही रूप से नहीं बनता है।

प्रसारण का तात्पर्य है–फेंकना। सिद्ध पुरुष अपनी आत्म–शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंश समय–समय पर आवश्यकतानुसार फेंकते तो रहते ही हैं, साथ ही उन्हें यह भी करना पड़ता है कि अन्तरिक्षीय दिव्य प्रभावों को आकर्षित करके अपने में उनका अवतरण–अवधारण कर सकें। दिव्य शक्ति प्राप्त करने के लिए

शरीरगत एवं मनोगत साधना ही पर्याप्त नहीं होती। अपने प्रसुप्त केन्द्रों का जागरण भी साधना का एक महत्त्वपूर्ण भाग है; पर उतने भर से ही वह महत्त्वपूर्ण प्रयोजन पूरा नहीं हो जाता। अन्तरिक्ष से भी बहुत कुछ प्राप्त करना पड़ता है। धरातल पर जलाशय क्षेत्र में अनेक उपयोगी पदार्थ और तत्त्व पाये जाते हैं, पर इससे कहीं अधिक मात्रा उसकी है, जो वायुभूत होकर अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करता रहता हैं, यह पदार्थ रूप में भी है और चेतना रूप में भी। उसे जल–थल पर पाये जाने वाले पदार्थों की तुलना में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान् समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए पवन, ताप, ध्वनि, प्रकाश, लेसर–रेडियो तरंगें, ऋतु प्रभाव, वातावरण आदि अनेकों बहुमूल्य तत्त्व आकाश में ही भरे पड़े हैं। यदि इन्हें आकर्षित एवं संचित किया जा सके, तो धरती पर पाई जाने वाली सम्पदा की तुलना में उसे असंख्य गुना अधिक मूल्यवान् पाया जा सकता हैं; फिर मात्र पदार्थ ही नहीं, अन्तरिक्ष में चेतना प्रवाह भी असीम मात्रा में भरा पड़ा है। इसे सचेतन में–अदृश्य लोक में विद्यमान रहने और मनुष्य परिकर के इर्द–गिर्द भ्रमण करते पाया जाता है। इसमें प्रेत–पितरों से लेकर देव–दानव स्तर की अनेकानेक सत्ताएँ परिभ्रमण करती रहती हैं। यों वे अपने रास्ते आती और चली जाती हैं; किन्तु प्रयत्नपूर्वक उन्हें पकड़ा और उपयोग में लाया जा सकता है। लोग प्रयत्न करने पर जलचरों और नभचरों को भी जाल बिछाकर पकड़ लेते हैं। यही प्रयोग अन्तरिक्ष की सचेतन सत्ताओं के संबंध में भी हो सकता है। देखना यह होता है कि अन्तरिक्ष के सघन क्षेत्र के साथ अधिक सरलतापूर्वक सम्पर्क कहाँ रहते हुए बन सकता है ? तत्त्वदर्शियों ने पाया है कि हिमालय का देवात्मा भाग इसके लिए अधिक उपयुक्त और सुविधाजनक है। अनेक क्षेत्रों की परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करते हुए तत्त्वदर्शियों ने देवात्मा भाग को ही अधिक उपयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण पाया है और उसी को अपने समुदाय के लिए सुनिश्चित स्थान नियत किया है।

तान्त्रिक साधनाएँ करने वाले, कापालिक अपने प्रयोगों के लिए श्मशान भूमि में डेरा डालते हैं। क्योंकि वहाँ का वातावरण एवं प्रेतात्माओं

का जमघट उन्हें अपने लिए अधिक कारगर दीखता है, ठीक इसी प्रकार उच्चस्तरीय आत्मबल सम्पादन के सम्बन्ध में भी हैं, जिन क्षेत्रों में देव शक्तियाँ, दिव्य आत्माएँ यूथ रूप में बहुलतापूर्वक विचरण करती हैं। वहाँ रहकर निर्धारित साधनाओं में उपयुक्त सहायता भी मिलती है और अहैतुकी अनुग्रह भी—मार्गदर्शन भी। मार्गदर्शन, परामर्श भी उन्हें उच्चस्तरीय मिलता रहता है। जिस प्रकार चन्दन के निकट उगने वाले अन्य पौधे भी सुगन्धित हो जाते हैं, उसी प्रकार देवात्मा क्षेत्र में रहने वाले स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरधारी, साधना की अपनी—अपनी रुचि के मनोरथ प्राप्त करते हैं। थियोसॉफिकल सोसाइटी के संस्थापकों ने यह प्रतिपादन विस्तार पूर्वक किया है कि हिमालय के देवात्मा भाग में सिद्ध पुरुषों की संगठित समिति कार्य करती हैं। उसके फैसले उन लोगों द्वारा कार्यान्वित किए जाते हैं। इससे जन—साधारण को अनेक ऐसी सहायताएँ अयाचित रूप से प्राप्त होती रहती हैं, जिन्हें वे अपने प्रबल पुरुषार्थ से भी प्राप्त नहीं कर सकते थे। सोसाइटी के उपरोक्त प्रतिपादन में बहुत कुछ सच्चाई है। इस क्षेत्र के साथ सूक्ष्म सम्बन्ध जोड़ सकने वाले अदृश्यदर्शियों ने वैसा ही पाया भी है। साधारण स्थानों में रहने वाले सामान्यजन भी इस क्षेत्र में जाकर थोड़े समय रहने पर भी अपने लिए उपयोगी जीवन तत्त्व सन्तोषजनक मात्रा में उपलब्ध करते हैं।

शीत प्रधान वातावरण में वस्तुएँ स्थिर रहती हैं। गर्मी की अधिकता में जहाँ पदार्थों का क्षरण अधिक मात्रा में होता है। वहाँ यह भी देखा गया है कि शीत में पदार्थों को देर तक सुरक्षित रखने की क्षमता है। शीत ऋतु में पदार्थ जल्दी खराब नहीं होते। रेफ्रीजरेटर में खाद्य पदार्थ कई—कई दिन सुरक्षित रहते हैं। बर्फ में दबाकर रखे गये मृत शरीर लम्बे समय तक यथावत् बने रहते हैं। शुक्राणुओं को शीतल करके उन्हें काफी समय तक गर्भाधान के उपयुक्त स्थिति में बनाये रखा जा सकता है। कोल्ड स्टोरों में फल—सब्जी आदि को महीनों सुरक्षित रखा जाता है।

अजगर, भालू शीत प्रदेश की गुफाओं में बिना कुछ खाये–पिये लम्बे समय तक गहरी निद्रा में सोते रहते हैं। हिमालय का देवात्मा भाग भी ऐसा है, जहाँ स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों को अनेक विकृतियों से बचाकर उपयुक्त स्थिति में सुरक्षित रखा जा सकता है। अब तो मृत शरीरों को गहरी शीतलता में इस निमित्त भी सुरक्षित रखा जाने लगा है कि कालान्तर में उन्हें पुनर्जीवित किया जा सकेगा। इतना निश्चित है कि शीतलता में सुरक्षा–सुस्थिरता अधिक है। सिद्ध पुरुषों की सूक्ष्म एवं स्थूल कायाओं को सुरक्षित एवं चिरस्थाई बनाए रहने की आवश्यकता अनुभव होती है। इसलिए उनने प्रकृति विनिर्मित केन्द्र स्तर वाला ऐसा क्षेत्र चुना है, जहाँ की सहज स्थिति है। अधिक गर्मी की तरह अधिक शीत भी सामान्य क्रिया–कलापों में बाधक होती है। इसलिए मध्यवर्ती चयन ही उपयुक्त पड़ता है। सिद्ध पुरुषों ने ऐसे ही संतुलित क्षेत्र को अपनी क्रीड़ा– भूमि बनाया हुआ है। यह सुरक्षित क्षेत्र है–देवात्मा हिमालय।

# अदृश्य चेतना का दृश्य उभार

जिस क्षेत्र में जिस प्रकार की गतिविधियाँ लम्बे समय तक चलती रहती हैं वहाँ का वातावरण उस प्रक्रिया से प्रभावित होता है। वहाँ रहने वाले उस चिर निर्मित प्रवाह से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। कोई विरले ही ऐसे होते हैं, जो उस दबाव या आकर्षण को अस्वीकार कर सकें। इसलिए जिन्हें जिस स्तर का बनना होता है, वे वहाँ खिंचते घिसटते जा पहुँचते हैं। मन उधर ही चलता हैं। वातावरण भी अपने अनुरूप व्यक्तियों को अपनी ओर खींचता है, धातुओं की खदानें भी इसी प्रकार बनती हैं। जहाँ धातु खण्ड बड़ी मात्रा में जमा हो जाते हैं, वहाँ एक प्रकार का चुम्बकत्व पैदा हो जाता है। उसकी आकर्षण शक्ति दूर–दूर तक बिखरे हुए उसी जाति के धातु कणों को धीरे– धीरे अपनी ओर खींचती रहती है। फलतः वह संग्रह निरन्तर बढ़ता रहता है और छोटी खदान कुछ ही समय में बड़ी बन जाती है। ऐसा ही आकर्षण व्यक्तियों में भी देखा गया है, क्षेत्र में भी और वातावरण में भी।

शहरी सुविधाएँ अभावग्रस्त ग्रामीणों अथवा बाबू स्तर के मन चले लोगों को अनायास ही खींचती चली जाती हैं। स्वभाव अनुरूप उन्हें अदृश्य निमन्त्रण मिलता है और ऐसा संयोग बन जाता है, जिससे वे अपने मनचाहे स्थान पर जा पहुँचने के लिए कोई संयोग प्राप्त कर सकें। जुआघर, शराबखाने, व्यभिचार के अड्डे भी अपने–अपने ढंग के लोगों को अदृश्य आमन्त्रण देकर बुलाते रहते हैं। फलतः एक ही प्रकृति के लोगों के गिरोह उन केन्द्रों से सम्बद्ध हो जाते हैं। यही बात सत्संगों के सम्बन्ध में भी हैं। उत्कृष्ट स्तर के लोग भी परस्पर सम्बन्ध बनाते और एक श्रृंखला में बँधते देखे गए हैं। चोर–उचक्कों से लेकर तस्करों हत्यारों तक के गिरोह इसी प्रकार बनते हैं। सन्त–सज्जनों की जमातें भी इसी आधार पर बनती देखी गयी हैं। सम्भवतः देवलोक और नरक भी इसी

सिद्धान्त के अनुरूप बने हैं। शोध संस्थानों से लेकर पुस्तकालयों तक में एक ही प्रकृति के लोग पाये जाते हैं। इससे प्रकट है कि वातावरण और स्वभाव का आपस में तारतम्य बैठ जाता है। हिमालय के सिद्ध पुरुषों के सम्बन्ध में भी यही है और देवात्मा क्षेत्र के सम्बन्ध में भी। वहाँ का परिकर बढ़ता भी जाता है और समर्थ—बलिष्ठ होने की स्थिति में भी होता है। लंका के छोटे से क्षेत्र में रावण का सुविस्तृत परिकर जमा हो गया था। नैमिषारण्य में सूत और शौनक समुदाय का कथा सत्संग जमा ही रहता था। इसी प्रकार हिमालय का देवात्मा क्षेत्र भी क्रमशः अधिक विस्तृत और परिपुष्ट होता चला गया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

महाभारत के लिए कृष्ण को उपयुक्त भूमि की तलाश करनी थी, जहाँ भाई—भाई की लड़ाई के बीच मोह आड़े न आने लगे। दूतों को भेजा और क्षेत्रों के प्रचलन का तलाश कराया, तो मालूम पड़ा कि कुरुक्षेत्र के इर्द—गिर्द भाई—भाई के साथ निर्ममतापूर्वक मारकाट करते रहने की घटनाएँ अधिक होती हैं। भूमि संस्कारों के प्रभाव को समझते हुए उसी क्षेत्र में महाभारत रचाए जाने का निश्चय हुआ। इसी प्रकार की एक पौराणिक घटना श्रवणकुमार की भी है। उनने कन्धे पर रखी काँवर में बैठे अन्धे माता—पिता को नीचे उतार दिया था और कहा था आप लोग पैदल चलें। मैं रस्सी के सहारे आपको रास्ता बता सकता हूँ। पैर ठीक होते हुए भी आप कन्धे पर क्यों सवार होते हैं ? पिता—माता पुत्र के यश को व्यापक बनाना चाहते थे। उसमें इस प्रकार व्यवधान आया देखकर उनने जान लिया कि यह कुसंस्कारी भूमि का प्रभाव है। उनने पुत्र को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि रात्रि को वहाँ विराम न किया जाए। जल्दी वह क्षेत्र पार कर लिया जाए। जैसे ही वह परिधि पार हुई, श्रवणकुमार के विचार बदले। उसने माता—पिता से क्षमा याचना की और फिर कन्धे पर काँवर में बिठाकर पहले की ही भाँति आगे की यात्रा सम्पन्न की। यह संस्कारित भूमि का प्रभाव है, जो मनुष्य में उत्कृष्टता एवं निकृष्टता के उतार—चढ़ाव उत्पन्न करता रहता है। हिमालय के

देवात्मा क्षेत्र के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती हैं। उसमें सूक्ष्म शरीरधारी सिद्ध पुरुषों का तो निवास रहता ही है। साथ ही उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अन्यान्य साधन भी उत्पन्न एवं विकसित हुए हैं। वहाँ पाई जाने वाली वस्तुओं में अपनी विशेषता है। वहाँ रहने वाले मनुष्यों और प्राणियों में विशेष प्रकार का स्वभाव भी पाया जाता है।

जौनसार बावर इलाके में अभी भी बहुपति प्रथा चालू है। बहु पत्नी प्रथा का रिवाज तो पुराने जमाने की तरह अभी भी जहाँ–तहाँ दीख पड़ता है; किन्तु बहुपति प्रथा का खुला प्रचलन कहीं नहीं हैं। वेश्यावृत्ति अवश्य होती है, पर वह तो देह व्यापार भर है। गृहस्थ बसाकर बहुपतियों में समान रूप से सहयोग पूर्वक रहना इसलिए सम्भव नहीं होता कि पुरुषों में स्त्रियों से भी अधिक इस सम्बन्ध में ईर्ष्या पायी जाती है। वे अपनी पत्नी का अन्य पुरुषों से सम्बन्ध सहन नहीं कर पाते और पता चलते ही भयंकर विग्रह पर उतर आते हैं। किन्तु पृथ्वी पर जौनसार बावर ही एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ बड़े भाई का विवाह होता है और शेष सभी भाई अपनी बड़ी भावज के साथ पत्नीवत सम्बन्ध बनाये रहते हैं। यह गुपचुप नहीं होता। सबकी जानकारी में होता है। सन्तानें भी बड़े पिताजी, मँझले पिताजी, छोटे पिताजी आदि सम्बोधन करती हैं। ईर्ष्या और कलह जैसा रंचमात्र भी नहीं दीख पड़ता है। इतिहास–पुराणों में एक द्रौपदी की ही ऐसी कथा है। पर वह ईर्ष्या, द्वेष से ऊँचे उठकर दाम्पत्य जीवन में भी सहयोग–सहकार मात्र जौनसार बावर क्षेत्र में ही दीख पड़ता है। यह मानवी ईर्ष्या पर सद्भाव–सहकार की विजय है। यह क्षेत्र भी देवात्मा हिमालय क्षेत्र से लगा हुआ है।

हिमालय की ऊँचाई पर स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ता जाता है, पर वहाँ व्यभिचार जैसी घटनाएँ कभी नहीं सुनने में आती हैं। तलाक और पुनर्विवाह तो होते हैं, पर वह सारी व्यवस्था पंचों की आज्ञा–अनुमति से सभी की जानकारी में होती है। दरवाजों में कुण्डी चढ़ाकर या रस्सी बाँध कर घर वाले काम पर चले जाते हैं। रोकथाम मात्र जानवरों की होती

है। कोई किसी की चोरी नहीं करता। पहाड़ी कुलियों की ईमानदारी प्रसिद्ध है। वे बोझा लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान को चलते हैं, उसमें बहुमूल्य वस्तुएँ और नकदी भी होती हैं। कुली आगे पीछे निकल जाते हैं, पर कभी ऐसा नहीं सुना गया कि कोई कुली सामान लेकर गायब हुआ हो या उसमें से अवसर पाकर कुछ चुराया हो। यह सहज सज्जनता हिमालय के इस हृदय निवासियों में पाई जाती है, फिर जो विचारशील हैं उनकी भलमनसाहत का तो कहना ही क्या ?

प्रकृति का चेतना से सम्बन्ध है और चेतना का प्रकृति से। दोनों की उत्कृष्टता–निकृष्टता का परस्पर सम्बन्ध बनता है। वसन्त जब महकता है तो उसका प्रभाव कोकिल, भ्रमर आदि से लेकर अन्यान्य जीवधारियों में मस्ती बनकर झूमता है। मादाएँ प्रायः उन्हीं दिनों गर्भधारण करती हैं। वसन्त समूची धरती पर एक ही समय नहीं आता, विभिन्न भू–खण्डों पर उसके ऋतुमास अलग–अलग होते हैं। जिस क्षेत्र में वसन्त उमड़ता है उसी में उसका मादक प्रभाव भी परिलक्षित होता है। देवात्मा हिमालय में वृक्षों का वसन्त ग्रीष्म में और वनस्पतियों का श्रावण, भाद्रपद में आता है; पर आध्यात्मिक उमंग उस क्षेत्र में सदा सर्वदा छाई रहती है। इसमें वनस्पति, हिम, सरिताएँ, निर्झर आदि सभी की पुलकन सम्मिलित है। यह प्रकृति के दबाव से होता है या चेतना के उल्लास से, इसका रहस्य गहराई में उतर कर देखा जाए तो प्रतीत होता है कि देवात्मा क्षेत्र में संव्याप्त चेतना तरंगें ही वातावरण को प्रभावित करती हैं। जो भी उधर जाता है, रहता है, स्थिर है, वह सात्विकता से ओत–प्रोत होता देखा जाता है। उसमें सामान्य की तुलना में अनेकों प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती हैं।

देवात्मा क्षेत्र हरिद्वार से आरम्भ होकर यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गोमुख, तपोवन; नन्दनवन वाले उत्तराखण्ड से आरम्भ होकर कैलाश, मान सरोवर तक चला गया है। कैलाश क्षेत्र को देवभूमि माना जाता है। शिव को कैलाश और पार्वती को मान सरोवर कहा जाता है।

इस क्षेत्र के प्रत्येक शिखर को एक मूर्तिमान देव माना गया है। नदियाँ, सरोवर, झरने देवियाँ हैं। गुफाओं को देवालय कहा जा सकता है। इस प्रकार यदि किसी को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो, तो वह सारा क्षेत्र प्रकटतः प्राकृतिक पदार्थों से बना; किन्तु तत्त्वतः देव चेतना से ओत–प्रोत दिखाई पड़ेगा। इस क्षेत्र में यदाकदा व्यक्ति तीर्थयात्रा के आधार पर वहाँ जा पहुँचते हैं। वे प्रकृति की शान्तिदायक शीतलता और साथ ही दिव्य चेतना की अभिनव प्रेरणा प्राप्त करते हैं। शर्त एक ही है कि पहुँचने वाला दिव्य भावना लेकर दिव्य प्रयोजन के लिए वहाँ पहुँचा हो। जहाँ शान्ति मिले, वहाँ कुछ समय शान्त मन से ठहर सकने जितना अवकाश लेकर गया हो। जो भगदड़ की तरह धक्के देते और धक्के खाते भटकते–भटकाते पहुँचते हैं, उन्हें मात्र कौतुक–कौतूहल ही दीख पड़ता है। ऐसे दिग्भ्रान्त मूर्ख को हर जगह पाये जाने वाले धूर्त अच्छी तरह पहचान लेते हैं और उलटे उस्तरे से हजामत बनाते हैं। इस वरदान क्षेत्र में अभिशाप भी उसी प्रकार पाये जाते हैं। घर–बिस्तर में चूहे, छिपकली, मकड़ी, खटमल, पिस्सू, जुएँ आदि का अड्डा जमा रहता है। मलीनता ही उनकी खुराक है। जो भाव श्रद्धा लेकर नहीं, कामनाओं की पूर्ति और चित्र–विचित्र दृश्य देखने जाते हैं, वे खीज और थकान ही साथ लेकर वापस लौटते हैं।

चर्म चक्षुओं को दृश्य पदार्थ ही दीख पड़ते हैं। उन्हीं को देखकर उन्हें मन को सन्तोष देना पड़ता है। बाल बोध की प्राथमिक पुस्तकों में प्रत्येक अक्षर के साथ एक तस्वीर जुड़ी रहती है। स्मरण रखने की दृष्टि से इस प्रकार की संगति बिठाने की उपयोगिता भी हैं। चित्रकला, मूर्तिकला का आधार यही है– प्रत्यक्ष को देखकर उसके साथ जुड़े हुए भावनात्मक सम्बन्ध, सूत्र में प्रतिपादित भाव चेतना को जाग्रत् करना। प्रसन्नता की बात है कि यह आवश्यकता भी उदारचेत्ता, सम्पन्नजनों ने अनुभव की है और ऐसे देवालय, स्मारक इस क्षेत्र में विनिर्मित किए हैं, जिनके दर्शन,

पूजन, वन्दन के सहारे प्रसुप्त श्रद्धा किसी सीमा तक जगायी जा सकती हैं। इस जागरण को यदि बिजली की कौंध जैसा क्षणिक न रहने दिया जाए, उस आलोक को अन्तरात्मा में बसाकर मार्गदर्शन के लिए आधार बनाया जाए, तो यह सब प्रकार उपयुक्त ही होगा। ऐसी तीर्थयात्रा से भी आत्मिक उत्कर्ष का प्रयोजन पूरा करने में सहायता मिलती है। फिर भी इतना तो स्मरण रखा ही जाना चाहिए कि पदार्थों से बने और आँखों से देखे गए दृश्य नेत्रों के माध्यम से आँखों को ही प्रभावित कर पाते हैं। दृश्य बदलने पर दृष्टि बदल जाती है और उसके माध्यम से मस्तिष्क पर पड़ी छाप भी तिरोहित हो जाती है।

विद्याध्ययन वर्णमाला याद करने से होता है। दिव्य चेतना के साथ अन्तरात्मा को जोड़ने की प्रक्रिया विशुद्ध भावनात्मक है, अदृश्य भी। फिर उसके लिए आवरण की सहायता लेनी पड़ती हैं। देवात्मा हिमालय में दीख पड़ने वाले दृश्य एवं देवालय इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

# अनेकानेक विशेषताओं से भरा पूरा हिमप्रदेश

ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण जीवात्मा दिव्य विभूतियों से सम्पन्न है। उसे यह विभूतिमत्ता बीज रूप में जन्मजात मिली है। उसकी संभावना इस स्तर की है कि विकास मार्ग पर चलते हुए पुनः ईश्वरत्व में प्रवेश करके तदनुरूप बन सके। इतनी अद्‌भुतशक्ति– संभावना का धनी होने पर भी उसे अपने समस्त क्रियाकलाप शारीरिक अवयवों के द्वारा ही सम्पन्न कराने पड़ते हैं। जीवात्माओं की इच्छा, अभिलाषा कुछ भी क्यों न हो, पर वह उन्हें संकल्प मात्र से पूरा नहीं कर सकता। इसके लिए उसे शारीरिक अवयवों का, मानसिक संरचना का उपयोग करना ही पड़ता है। बिना इसके हलचलों की सक्रियता दीख नहीं पड़ती। यह वास्तविकता इस सीमा तक प्रकट होती है कि यदि शरीर और प्राण पृथक् हो जाए, तो अकेला जीवात्मा अदृश्य लोकवासी चेतना स्फुल्लिंग मात्र बनकर रह सकती हैं। उसके द्वारा किन्हीं निर्धारणों का क्रियान्वित कर सकना संभव नहीं रहता।

ठीक यही बात परब्रह्म के सम्बन्ध में भी है। यह सर्वव्यापी और व्यवस्थापक होने के नाते निराकार ही रह सकता है। प्रतिमाएँ तो ध्यान धारणा के निमित्त ही बनाई जाती रहती हैं। निराकार परमेश्वर को सृष्टि के विभिन्न क्रियाकलाप सम्पन्न करने के लिए किन्हीं शरीरधारियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। वे सहयोगी दो प्रकार के होते हैं। एक विशिष्ट दूसरे वरिष्ठ। विशिष्टों में देव शक्तियाँ आती हैं। उन्हें मोटे तौर से तीन भागों में विभाजित किया जाता हैं। सृजेता ब्रह्मा, अभिवर्धक विष्णु और परिवर्तन प्रधान शिव। इन्हें देवी रूप में मान्यता दी जाती हैं, तो वे ही ब्राह्मी, वैष्णवी, शाम्भवी समझी जाती है। इनमें जब त्रिवर्गी के

भेद–उपभेदों को गिना जाता है, तो उनके भेद तैंतीस कोटि हो जाते हैं। कोटि शब्द श्रेणियों के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है और करोड़ के अर्थ में भी। देवताओं की तैंत्तीस कोटियाँ हैं या वे तैंत्तीस करोड़ हैं। इस विवाद् में न पड़कर यहाँ इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि वे अनेकानेक हैं और अपने–अपने हिस्से का काम करते रहते हैं। देवताओं के दो ही काम हैं 'धर्म की स्थापना और अधर्म का निराकरण।' शरीर भी यही करता है। जो उपयोगी है उसे मुँह, नासिका आदि से ग्रहण–धारण करता रहता है। जो कचरा है उसे मल, मूत्र, स्वेद आदि के रूप में बाहर फेंकता रहता है। जहाँ क्रिया होती है वहाँ कचरा भी बनता है। मशीनों में भी यही होता रहता है। वे ऊर्जा माँगती है और कचरा उगलती है। सृष्टि में भी यही होता रहता है। दोनों की व्यवस्था करने में ईश्वर की इच्छा के अनुरूप देव शक्तियाँ जुटी रहती हैं। वे सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन और दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन में निरन्तर निरत रहती हैं। सृष्टि का सन्तुलन इसी प्रकार बना रह पाता है।

देवताओं के उपरान्त दूसरा समुदाय सिद्ध पुरुषों का है। वे भी आमतौर से अदृश्य ही रहते हैं। पर आवश्यकतानुसार स्थूल शरीर भी धारण कर लेते हैं। देवता परब्रह्म के अधिक निकट हैं और सिद्ध पुरुष प्रकृति के। दैवी इच्छानुसार समस्त विश्व ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्था बनाए रहने में देवताओं की प्रमुख भूमिका रहती है। सिद्ध पुरुषों का कार्य क्षेत्र पृथ्वी तक सीमित है। वे पृथ्वी पर चलने वाले उथल–पुथल को सन्तुलित करते हैं। आत्मशक्ति सम्पन्न, सात्विक, सज्जन प्रकृति के उदारचेताओं को वे ढूँढ़ते रहते हैं और जो भी सत्पात्र दीख पड़ते हैं, सत्प्रयोजनों की पूर्ति के लिए अपनी क्षमता का एक अंश धारणकर्त्ता को आवश्यकता एवं पात्रता के अनुरूप देते रहते हैं। इस प्रकार की अहैतुकी कृपा वे बरसाते रहते हैं। श्रेष्ठता सम्पन्नों को ऐसे वरदान निरन्तर मिलते रहते हैं। साथ ही उनका दूसरा कार्य भी चलता है– अनौचित्य का निराकरण। इसी को अधर्म का उन्मूलन भी कहा जा सकता है। धरातल के दिग्पाल–दिग्गज,

यह सिद्ध पुरुष ही कहे जाते हैं। वे पृथ्वी का भौतिक और आत्मिक, पदार्थपरक और चेतनात्मक संतुलन बनाये रहने के लिए यथा संभव प्रयत्न करते हैं। इन्हें धरती वासियों के लिए परब्रह्म का विशेष अनुग्रह भी समझा जा सकता है।

साधनारत योगी तपस्वी जब अपने कषाय—कल्मषों का निराकरण कर लेते हैं, साथ ही देवोपम मानवी गरिमा के समस्त आधारों से अपने को सुसज्जित कर लेते हैं, तो उन्हें देवात्मा का—सिद्ध पुरुष का पद मिल जाता है। फिर वे मिलजुलकर धरातल की आये दिन उत्पन्न होती रहने वाली समस्याओं के बारे में विचार करते रहते हैं और उसके समाधान संदर्भ में अपनी भूमिका का—योजना का निर्धारण करते रहते हैं।

बिखराव सदा असुविधाजनक होते हैं और सहकार सुविधाजनक। एकजुट होने के लिए समीपवर्ती निवास भी आवश्यक है। सैनिकों की छावनी अपने—अपने क्षेत्रों में होती है। वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाएँ भी एक क्षेत्र में सटी हुई बनती हैं; ताकि परस्पर सहकार संभव हो सके। विश्वविद्यालयों में अनेक मनीषी अपने—अपने काम सँभालते हैं। रेल के इंजन बनाने वाले कारखाने हैवीइलेक्ट्रिकल, टाटा लौह कारखाने जैसे विशेष कल कारखाने भी एक कड़ी परिधि को घेरते हैं। उन्हें छोटी—छोटी फैक्ट्रियों के रूप में बिखेरा नहीं जा सकता। ठीक इसी प्रकार सिद्ध पुरुष भी एक—एक करके जहाँ—तहाँ बिखरे नहीं रहते। उन्हें परस्पर विचार विनिमय करना पड़ता है, और योजनाबद्ध कार्य पद्धति अपनाने के लिए ऐसी दशा में आवश्यक हो जाता है कि वे किसी सघन क्षेत्र में निवास करें। ऐसा स्थान इस पृथ्वी पर हिमालय का वह क्षेत्र ही है जिसे देवात्मा नाम दिया जाता रहा है। उत्तराखण्ड उसका हृदय प्रदेश है। सिद्ध पुरुषों की क्रीड़ा स्थली भी इसी को समझा जाना चाहिए।

कभी देवताओं का निवास भी यही रहा है। उनकी कथा—गाथाओं पर ध्यान देने और उनके बुद्धि—संगत निष्कर्ष निकालने के लिए जब प्रयत्न किया जाता है, तो देवताओं का लोक स्वर्ग किसी अन्य ग्रह पर

अवस्थित होने वाली बात गले नहीं उतरती। कारण कि सौर मंडल के २३ उपग्रहों की पूरी–पूरी छानबीन लगभग पूरी हो चुकी है। वहाँ पदार्थ भर भरा पाया गया है। सचेतन प्राणियों का अस्तित्व नहीं मिला। इसी प्रकार सौर मंडल के बाहर वाले क्षेत्र की रेडियो तरंगों, प्रकाश विकिरणों के माध्यम से खोजबीन करने पर ऐसे क्षेत्र नहीं मिले। जहाँ किन्हीं बुद्धिमान् प्राणियों का अस्तित्व स्वीकारा जा सके। फिर स्वर्ग कहाँ हो सकता है ? जिसमें मानवाकृति के प्राणी निवास करते हों या करते रहे हैं। देव मान्यता को स्वीकराने पर इतना तो मानना ही पड़ता हैं कि उनका स्वभाव, रुझान, निर्वाह, साधन, सौन्दर्य, बोध, सरसता आदि की दृष्टि से वे मनुष्य से मिलते–जुलते ही रहे हैं। उनका मनुष्यों के साथ संबंध भी रहा है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि धरती की सृष्टि के आरंभ में यहाँ देवता ही प्रकट हुए थे और उन्हीं के वंशज रूप में मनुष्य प्रकटे थे। आरंभिक ज्ञान और साधनों की व्यवस्था उन्होंने की थी। प्रयोजन पूरा करने के उपरान्त वे अदृश्य हो गये और अपने निर्धारित कार्य में लग गये।

स्वर्ग की मान्यता के संबंध में उसकी संगति धरती के साथ ही बैठती है। मनुष्यों का उस क्षेत्र में आवागमन रहा है। देवता भी समय–समय पर पृथ्वी पर आते और मनुष्यों की चेतना में बैठकर उन्हें आवश्यक सामयिक परामर्श देते रहे हैं। ज्ञान और विज्ञान का आविर्भाव किन्हीं महामानवों के अन्तःकरणों में अनायास ही होता रहा है। इसके बाद उन्हें ऐसा दिशा निर्देशन मिलता रहा है, जिसके आधार पर वे किसी सुनिश्चित लक्ष्य तक पहुँच सकें।

दशरथ और अर्जुन के देवलोक जाकर वहाँ वालों की सहायता करने, असुरों को परास्त करने की कथाएँ प्रख्यात हैं। नारद जी अक्सर विष्णु लोक जाकर भगवान् से परामर्श किया करते थे। नहुष, ययाति आदि ने सशरीर स्वर्ग जाने का प्रयत्न किया था। युधिष्ठिर का स्वर्ग ले जाने के लिए देवयान आया था। इसी प्रकार देवताओं का भी मनुष्यों के अनेक

कार्यों में सहयोग रहा है। कुन्ती के पुत्र देव–पुत्र ही थे। शकुन्तला की माँ देवलोक से पृथ्वी पर उतर कर विश्वामित्र के संयोग से उसे जन्म दे गई थी। पाण्डव अन्त–समय में सशरीर स्वर्गारोहण के लिए अग्रसर हुए थे।

इन कथा–गाथाओं को यदि मिथक मानकर सन्तोष न कर लिया जाए और धरती पर स्वर्ग होने की बात पर ध्यान जुटाया जाए, तो इसी निश्चय पर पहुँचना पड़ता है कि हिमालय का देवात्मा भाग कभी अति पुरातन काल में स्वर्ग भी रहा है। देवता सुमेरु पर्वत पर रहते थे। उनके उद्यान का नाम नन्दन वन था। यह दोनों ही इसी नाम से उपरोक्त क्षेत्र में अभी भी विद्यमान हैं। सुमेरु को स्वर्ण–पर्वत कहा गया है। उस शिखर पर अधिकांश समय सूर्य की पीली किरणें पड़ती हैं। अस्तु, बरफ सुनहरी दिखती है–स्वर्ण की बनी जैसी प्रतीत होती है। अब भू–भाग नीचे आ गया है, पर्वत ऊँचे हो गये। शीत की अधिकता बढ़ी, संभवतः इसी कारण देवताओं ने वह क्षेत्र अपने लिए उपयोगी न समझा हो और कारण शरीरों में अन्तरिक्ष क्षेत्र में रहने लगे हों। अपना स्थान सिद्ध पुरुषों के लिए स्थानान्तरित कर दिया हो।

जो हो यहाँ चर्चा सिद्ध पुरुषों के संबंध में अभीष्ट है। उनके लिए यह स्थान सर्वथा उपयुक्त भी है। पूर्ववर्ती देव निवास होने के कारण उसकी सत्पात्रता, सुसंस्कारिता भी बढ़ी–चढ़ी है। फिर धरातल की परिस्थितियों को दूर–दूर तक देखने, समझने की क्षमता भी। धरती की निचली पर्तों पर हवा में उड़ने वाला कचरा तह बनाकर बैठता रहता है। इसी प्रकार जिन स्थानों की समुद्र सतह से ऊँचाई कम हो वहाँ स्वस्थता और सम्पन्नता के साधन घटते जाते हैं। सौन्दर्य सद्भाव भी अपेक्षाकृत कम होता है। जैसे–जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे भूमि की उर्वरता और प्राणियों की प्रतिभा का विकास हुआ दृष्टिगोचर होता हैं। इस दृष्टि से हिमालय के ऊँचाई वाले क्षेत्र में जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य की भरमार है, वहाँ स्वास्थ्य संरक्षक तत्त्व भी कम नहीं हैं। साधन सम्पन्न

लोग गर्मी के दिनों में पहाड़ों पर अपनी निवास व्यवस्था बनाते हैं। जो अधिक समय वहाँ ठहरने की स्थिति में नहीं हैं, वे उस क्षेत्र में सैर–सपाटे के लिए निकलते हैं। कितने ही सेनेटोरियम पहाड़ी क्षेत्र में बने हैं। जिसमें क्षय जैसे कष्ट साध्य रोगों के रोगी रोग–मुक्ति का लाभ प्राप्त करते हैं। सम्पन्न लोगों के विद्यालय भी देहरादून, मँसूरी, नैनीताल, अलमोड़ा जैसे स्थानों में बने हैं; ताकि छात्र विद्या प्राप्ति के अतिरिक्त प्रकृति सान्निध्य एवं उपयुक्त जलवायु के सहारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि कर सकें। पहाड़ी क्षेत्र में निर्धनता रहते हुए भी वहाँ के निवासियों में सहनशीलता एवं सज्जनता की मात्रा अन्य स्थानों की अपेक्षा कम नहीं, अधिक ही पाई जाती हैं।

तीर्थयात्रा की धर्म भावना से प्रेरित होकर अब धर्म प्रेमी अन्यान्य भीड़ भरे नगरों में देवदर्शन के लिए जाने की अपेक्षा उत्तराखण्ड की दिशा अधिक उत्साहपूर्वक पकड़ने लगे हैं। अब से १०० वर्ष पहले मुश्किल से ५ हजार यात्री उस क्षेत्र में जाते थे, पर अब उसकी संख्या २० लाख से अधिक होती हैं। यह प्रमाण बताते हैं कि मानसिक शान्ति की दृष्टि से जन साधारण के लिए भी देवात्मा हिमालय वाला भाग कितना उत्साहवर्धक और आनन्ददायक है।

# पर्वतारोहण की पृष्ठभूमि

हिमालय के देवात्मा भाग में अनेकानेक विशेषताओं से भरा पूरा वातावरण है। उसके सान्निध्य में आने के लिए हर किसी का जी ललचाता है, पर वहाँ पहुँच या रह वे ही पाते हैं जिनकी इच्छाशक्ति में श्रमशीलता, संयमशीलता, संतुष्टि एवं तितीक्षा वृत्ति का समुचित समावेश है। इसके बिना उस विलासिता के साधनों के अभाव वाले क्षेत्र में हर किसी के रहने की संभावना बनती ही नहीं। वन प्रदेश का बाहुल्य, चढ़ाव–ढलान वाले ऊबड़–खाबड़ क्षेत्रों में सामान्य आवागमन भी उन लोगों के लिए भारी पड़ता है, जिन्हें अपने शरीर का भार ढोना भी कठिन पड़ता है, जो पग–पग पर वाहनों का आश्रय लेते हैं।

हिमालय निवास अपने आप में एक तपश्चर्या है। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, सुरुचि पूर्ण वातावरण एवं अध्यात्म तत्त्वों का उच्चस्तरीय समावेश तो अपनी ढंग की अनोखी विशेषताएँ हैं ही। इन दिनों तो उस क्षेत्र में आवागमन के मार्ग भी बन गये हैं और वाहन भी मिलने लगे हैं। पर जिन दिनों ऐसा कुछ भी नहीं था उन दिनों भी आत्म साधना के लिए उपयुक्त स्थान खोजने वाले उसी क्षेत्र में पहुँचते थे। तप साधना में निरत होते और जीवन का अन्तिम अध्याय वहीं समाप्त करते थे। हिमालय में कितने तपस्वी साधना प्रयोजन के लिए उस क्षेत्र में पहुँचते रहे हैं, उसका विवरण पुराणों के पृष्ठ उलटने पर सहज ही चल जाता है। लगता है किसी समय हिमालय का देवात्मा भाग तपोभूमि के रूप में मान्यता प्राप्त करता रहा है। अति प्राचीन–काल से लेकर अद्यावधि साधना परायणों को उसी क्षेत्र में आकर्षण एवं सन्तोष प्राप्त होता रहा है। यश और स्मारकों के लोभ में न पड़ने वाले व्यक्ति एकान्त साधना में निरत रहते रहे हैं। इस चयन का एक बड़ा लाभ यह भी रहा है कि उस क्षेत्र

में सूक्ष्म रूप से निवास करने वाले सिद्ध पुरुष उन आत्म परायणों का सामयिक मार्गदर्शन एवं सहकार करते हुए अपनी उपस्थिति का परिचय देते रहे हैं।

इस क्षेत्र की भूमि का अधिकांश भाग ऊबड़-खाबड़ है। उसमें बड़े भवन निर्माण की सुविधा नहीं है; फिर भी भावुक भक्तजनों और उदार साधन सम्पन्नों के प्रयास से यहाँ छोटे-मोटे अनेक देवालय बनते रहे हैं। तीर्थ-यात्रियों की श्रद्धा का पोषण भी तो इससे होता है। थोड़ा चलने पर थकान मिटाने, सुस्ताने के लिए जहाँ आश्रय की तलाश होती है, वहीं संयोगवश कोई देवालय भी मिल जाता है। यों वे सभी छोटे आकार के हैं, तो भी समीपवर्ती सचेतन प्रकृति उनकी गरिमा में चार चाँद लगा देती है। सुदूर समतल क्षेत्रों में बने विशालकाय भव्य भवनों वाले देवालय अपनी पूँजी और वास्तुकला के कारण-पूजा समारोहों के कारण जितने प्रभावोत्पादक लगते हैं, उससे कम महिमा इन छोटे देवालयों की भी नहीं है।

मीलों की दृष्टि से इस छोटे कहे जाने वाले क्षेत्र में तीर्थों की भरमार है। यहाँ चार धाम हैं:- {१} बद्रीनाथ {२} केदारनाथ {३} गंगोत्री {४} यमनोत्री। चार प्रमुख पर्वत शिखर हैं:- {१} गंध मादन {२} शिवलिंग {३} सुमेरु {४} सत्तोपंथ। अन्य प्रमुख तीर्थों में यहाँ -{१} पंच प्रयाग {२} पंच बद्री {३} पंच केदार {४} पंच सरोवर हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक देवी देवताओं के छोटे-बड़े मन्दिर हैं। आद्य शंकराचार्य ने यहाँ ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी। ऐसे भी स्थान मिलते हैं जिनके सम्बन्ध में मान्यता है कि यहाँ देव सत्ताओं का निवास है अथवा ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने समय में साधना की है। पाण्डवों के लम्बे समय तक यहाँ रहने की स्मृतियाँ दिलाने वाले भी कुछ स्थान हैं। केदार से कैलाश तक के क्षेत्र में अनेक हिमाच्छादित शिखर हैं। छोटे-बड़े सरोवरों की, हिमानियों की, निर्झरों की बड़ी संख्या है। छोटे-छोटे हिमनद थोड़ी-थोड़ी

दूर बहकर किसी बड़ी नदी में मिलते चले गये हैं। ऐसी बड़ी नदियों में गंगा, यमुना, अलकनन्दा, सरयू, ब्रह्मपुत्र आदि प्रमुख हैं। कैलाश मानसरोवर की अपनी गरिमा और महिमा विशिष्ट है। कहा जाता है इस समूचे क्षेत्र में लगभग १०० सरिताएँ बहती हैं और एक हजार के करीब हिमानियाँ हैं। वे एक-दूसरे के साथ मिलती चली गयी हैं और समुद्र तक पहुँचते—पहुँचते गंगा और ब्रह्मपुत्र के रूप में मात्र दो रह गयीं हैं।

इस प्रदेश में वृक्ष वनस्पतियों का भी बाहुल्य है। उनकी रासायनिक विशेषताएँ अन्य सामान्य क्षेत्रों में उगने वाली वनस्पतियों की तुलना में कहीं अधिक हैं। यह यहाँ के विशेष वातावरण की विशेषता है। इसी प्रकार यहाँ पाये जाने वाले जीव—जन्तुओं, पक्षियों में भी अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं। राजहंस मानसरोवर पर पाये जाते हैं, जो कीड़े नहीं खाते, गहरे पानी में गोता लगाकर मोती ढूँढ़ते और उन्हीं पर निर्वाह करते हैं। लम्बी उड़ान की क्षमता भी उनमें ऐसी होती है, जिसे अनोखी कहा जा सके। नीर—क्षीर विवेक भी उनमें होता है। इसके अतिरिक्त कस्तूरी हिरण, चँवर पूँछ वाली गाय, याक, सफेद भालू, सफेद लोमड़ी, सफेद तेंदुआ आदि अनेक प्राणी ऐसे हैं जो इसी क्षेत्र में देखे गये हैं।

हिम मानव के संबंध में ऐसी ही किम्वदंती हैं। उसे देखा तो अनेकों ने है, पर पद—चिह्न प्रमाण स्वरूप मिले हैं। उसे मनुष्य से प्रायः दूने आकार का और बल में दस पहलवानों के सदृश बताया जाता है। वह नीचे उतर तो आता है, पर रहता कहाँ है ? उसका परिवार कहाँ रहता है ? यह अभी तक पता नहीं चला। पकड़ में भी किसी के नहीं आया है। फिर भी घटनाएँ और विवरण इतने अधिक हैं कि उसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। अनेक विदेशी पर्यटक खोजियों ने भी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उसका अस्तित्त्व स्वीकारा है। जो हो, इतना अवश्य है कि इस क्षेत्र में कुछ अधिक ऊँचाई पर जो प्राणी पाये जाते हैं, जो वनस्पतियाँ देखी गई हैं, वे सर्वथा असाधारण हैं। उनकी

विशेषताओं और उपलब्धियों के संबंध में यदि बारीकी से जाँच पड़ताल की जाय, तो पाया जायेगा कि यह समूचा परिकर अनेकानेक ऐसी विचित्रताओं से भरा पड़ा है, जो मनुष्य के लिए असाधारण रूप से उपयोगी भी हैं।

इस क्षेत्र में आमतौर से तीर्थ यात्री ही पर्यटक के रूप में भ्रमण करते पाये जाते हैं। उन्हें उस क्षेत्र की प्राकृतिक सुन्दरता से अपने नेत्रों को तृप्त करने का लाभ मिलता है। पैदल चलने को भी एक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं स्वास्थ्य संरक्षक विधा माना गया है। नदियाँ अनेक खनिजों और वनस्पतियों का सार अपने साथ लेकर बहती हैं। इसीलिए उनका जल भी जीवनदायी औषधियों के समतुल्य रहता है। गंगा जल की महत्ता सर्वविदित है। उसे श्रद्धा के कारण ही श्रेय नहीं मिला है, वरन् वैज्ञानिक परीक्षण में भी यह पाया गया है कि उसमें जीवनी शक्ति संवर्धक एवं अनेक रोगों के निवारण की क्षमता है। यह गंगा की विशेषता उस हिमप्रदेश से बहने वाली अन्यान्य नदियों में भी न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती है।

देवात्मा हिमालय क्षेत्र में कुछ प्रमुख हिमाच्छादित शिखरों की ऊँचाई समुद्र की सतह से इस प्रकार है:—गंगोत्री १०५०० फीट, गोमुख १२७७० फीट, नन्दनवन १४२३० फीट, भगीरथ पर्वत २२४९५ फीट, मेरुशिखर २१०५० फीट, सतोपंथ शिखर २३२१३ फीट, केदारनाथ शिखर २२०७७ फीट, सुमेरु शिखर २०७०० फीट, स्वर्गारोहण शिखर २३८८० फीट, चन्द्रपर्वत २२०७० फीट, नीलकंठ शिखर २१६४० फीट और भी कितने ही प्रमुख शिखर उस क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं। उनकी भी ऊँचाई न्यूनाधिक मिलती जुलती है।

कुछ वर्ष पूर्व हिमालय के एक २२ हजार फुट ऊँचे पर्वत शिखर पर एक पर्वतारोही दल गया था। उसमें १३ यात्री थे, इनकी व्यवस्था के लिए १८ टन, लगभग ५०० मन साधन सामग्री साथ ले जाने की

आवश्यकता पड़ी। इसे ढोने के लिये ६५० कुली तथा रास्ता बनाने वाले ५२ शेरपा साथ गये। समय–समय पर ऐसे ही अन्य पर्वतारोही दल संसार के विभिन्न क्षेत्रों से आते रहते हैं। उनमें से अधिकांश सफल रहे; पर कुछ को, सदस्यों में से कइयों को प्राण गँवाने पड़े और भारी कष्ट सहकर वापस लौटने के लिए विवश हुए।

पर्वतारोही इतना जोखिम भरा कार्य किसलिए उठाते हैं ? इसका मौलिक प्रयोजन तो प्रत्यक्षतः इतना ही दिखाई पड़ता है कि दूसरों पर अतिरिक्त बलिष्ठता, साहसिकता और कुशलता की छाप डाली जाय। लोगों को चकित किया जाय कि जो कार्य दूसरे लोग नहीं कर सकते उसे वे कर दिखाते हैं। इस आधार पर अपने को विशिष्ट लोगों की पंक्ति में बैठने का यश प्राप्त करते हैं। सम्भवतः पर्वतीय वातावरण में लगातार कुछ दिन रहने से स्वास्थ्य संवर्धन में भी सहायता मिलती है। चित्र–विचित्र दृश्य देखने पर कलात्मक दृष्टि उभरती है। ऊँचे क्षेत्रों में आक्सीजन कम पड़ जाने पर भी मनोबल के आधार पर उस कमी को सहन करना किस प्रकार संभव हो सकता है। इस तथ्य को भी सिद्ध करता है। जिनका मात्र आरोहण भर से संबंध है, उनका प्रयोजन मात्र यही रहता हो; फिर भी वे उन दुर्गम स्थानों तक पहुँच पाने में असफल रहे हैं, जिसे वस्तुतः देवात्माओं की आश्रयस्थली कहा गया है।

जिनकी वैज्ञानिक दृष्टि है, वे इस आधार पर अन्यान्य कई प्रयोजन भी सिद्ध कर सकते हैं। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर शोधकर्त्ता इसीलिए जाते हैं कि वहाँ के नीचे वाले धरातल की स्थिति जाँच सकें। संभावित बहुमूल्य खनिजों की टोह ले सकें। स्वास्थ्य सुधार एवं दीर्घजीवन के लिये किस क्षेत्र का वातावरण कितना उपयोगी हो सकता है, यह जान सकें। अन्तर्ग्रही शोधों के लिए भी हिमालय के ऊँचाई वाले भाग अन्वेषण के लिए सहायक हो सकते हैं। नदियों के पानी में पाई जाने वाली विशेषताएँ भी शोध का विषय हो सकती हैं। किस नदी निर्झर के

किस भाग में किस स्तर के गुण हैं और उनका उपयोग चिकित्सा प्रयोजनों के लिये किस सीमा तक हो सकता हैं ? यह भी एक अनुसंधान का विषय है।

उत्तराखण्ड की एक सरिता "सोन गड़" नदी में स्वर्ण कणों की एक अच्छी मात्रा पाई गई। उससे अनुमान लगाया जाता है कि जिस क्षेत्र से यह नदी आती है, उसके आस–पास कहीं भूमिगत स्वर्ण भण्डार हो सकता है। ऐसे–ऐसे अनेक आधार हैं जिनके निमित्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति उस क्षेत्र में जोखिम भरा परिभ्रमण कर सकते हैं। महत्वपूर्ण अनुसंधान सदा प्रयोगशालाओं में बैठकर ही सम्पन्न नहीं होते रहे हैं। उनके लिए लम्बी यात्राएँ भी करनी पड़ी हैं। भूखण्डों, द्वीपों, सागरों, वन, पर्वतों जलाशय की स्थिति जानने के लिए कितने ही शोधकर्त्ताओं ने परिभ्रमण को अपना प्रमुख आधार बनाया है। इन्हीं कार्यों में पर्वत भी आते हैं। समुद्र की गहराई में सन्निहित सम्पदाओं को खोजने में इतना कुछ पाया गया है, जिसे धरती पर उपलब्ध सम्पदा से किसी भी प्रकार कम मूल्यवान् या महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता। पर्वतों को–विशेषतया देवात्मा खण्ड क्षेत्र को शोध का विषय बनाया जाए, तो उससे भौतिक ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत कुछ पाया जा सकता है।

दिव्य वनौषधियाँ अपने आप में एक महान् विषय है। सामान्य जड़ी–बूटियाँ तो उर्वर भूमि वाले वन प्रदेशों में जहाँ–तहाँ उगी पाई जाती हैं। इनमें से जो सुलभ स्थानों में बहुलता के साथ पाई जाती हैं, उन्हीं को मजदूर स्तर के लोग खाली समय में खोद लेते हैं। इसके बाद भी उनका यह प्रयत्न नहीं कि बीज आने से पूर्व उन्हें खोद लेने पर उनकी वंश परम्परा कुछ ही दिनों में समाप्त हो जायेगी, इसलिए उन्हें पकने पर खोदा जाय। बीज वहीं बिखेर दिये जाएँ; ताकि अगले दिनों भी उनकी उपलब्धि लगातार होती रहे।

वनौषधियों की शोध इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उस आधार पर समूची

मनुष्य जाति को कष्ट साध्य रोगों से छुटकारा दिलाया जा सकता है। विश्वभर में जो खर्च और श्रम औषधि निर्माण के लिए हो रहा है, वनौषधियों के आधार पर उसमें भारी कटौती हो सकती है। अपने देश के लिए एक ऐसा उद्योग हाथ लग सकता है, जो निर्धन लोगों को आरोग्य प्रदान करने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो, साथ ही विदेशी मुद्रा का भी बड़ी मात्रा में अर्जन कर सके। यह प्रकटतः प्रसिद्ध वनौषधियों की बात हुई। हिम पिघलने के उपरान्त पर्वतों की मिट्टी वाले भागों में वनस्पतियाँ भी प्रकट हो जाती हैं, जो हिमपात के दिनों उसके नीचे दब जाती हैं; किन्तु जीवित बनी रहती हैं। बर्फ हटते ही उनका वसन्त फूट पड़ता है। श्रावण, भाद्रपद के महीनों में हिमालय के कई क्षेत्र पुष्पवाटिका की तरह खिल पड़ते हैं। इन क्षेत्रों को "फूलों की घाटी" कहा जाता है। उनकी मनोरम दृष्टि तो नयनाभिराम होती ही है, साथ ही मखमली गलीचा बिछा होने जैसा दृश्य प्रस्तुत होता है; पर साथ ही इन सुगंधित वनस्पतियों में से कितनी ही ऐसी होती हैं, जो औषधि प्रयोजनों के लिए अमृतोपम गुणकारी सिद्ध हो सकें। इनकी खोज नये सिरे से की जानी आवश्यक है। इस कार्य को पर्वतीय क्षेत्रों की यात्रा से ही पूरा किया जा सकता है।

# तीर्थस्थान और सिद्ध पुरुष

प्रसुप्त दिव्य शक्तियों का भण्डार मानवी काया में बीज रूप में प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। दैनिक क्रिया–कलाप में उनका बहुत छोटा भाग ही प्रयुक्त हो पाता है। जो वस्तु निष्क्रिय पड़ी रहती है, वह अपनी क्षमता खो बैठती है। पड़े रहने वाले चाकू को जंग खा जाता है। कोठों में बन्द अनाज को कीड़े लग जाते हैं। बक्से में बन्द कपड़े अनायास ही सड़ने लगते हैं। खाली पड़े रहने वाले मकानों में सीलन–सड़न चढ़ती है और चूहे, छछूँदर, चमगादड़ जैसे जीव उसे और भी जल्दी खस्ता हाल बना देते हैं। मानव दिव्य शक्तियों के बारे में भी यही बात है। वह पेट–प्रजनन भर के लिए दौड़–धूप करता है। इतने छोटे काम में शक्तियों का लघु अंश ही काम आता है। शेष उपेक्षित स्थिति में पड़ा–पड़ा निष्क्रिय–निर्जीव हो जाता है। यदि इस प्रसुप्ति को जागृति में परिणत किया जा सके, तो मनुष्य सामान्य व्यक्ति न रहकर मनीषी, योगी, तपस्वी, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी स्तर का महामानव सिद्ध पुरुष बन सकता है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में विद्यमान अगणित प्रसुप्त बीजों को जाग्रत् कैसे किया जाय ? इसके लिए साधना वर्ग के दो प्रयोजन ही कार्यान्वित करने होते हैं–एक तप दूसरा योग। इनके दार्शनिक और क्रियापरक कितने ही स्वरूप हैं। अपनी स्थिति और सुविधा के आधार पर उनमें से इस विषय में रुचि लेने वाले अपने लिए मार्ग चयन करते हैं और तत्परता, तन्मयता अपनाकर संकल्पपूर्वक अभीष्ट लक्ष्य की ओर साहसिक प्रयाण करते हैं।

आत्मोत्कर्ष की साधनाओं के लिए मात्र कर्मकाण्ड ही सब कुछ नहीं है। उसके लिए उपयुक्त वातावरण भी चाहिए। बीज कितना ही उत्तम क्यों न हो, पर उसे विकसित–पल्लवित होने का अवसर तभी मिलता है, जब भूमि उपजाऊ हो। खाद–पानी की व्यवस्था हो और देखरेख करने

वाले व्यक्ति का संरक्षण मिले। विशेष क्षेत्र में विशेष प्रकार के फल, शाक, अन्न, वृक्ष, वनस्पति जीव–जन्तु आदि जन्मते हैं। हर जगह, हर वस्तु का उत्पादन एवं विकास नहीं होता। योग और तप के लिये यों कोई भी स्थान अपनाया जा सकता है। "सभी भूमि गोपाल की" वाली उक्ति के अनुसार मन चंगा होने पर कठौती में गंगा प्रकट हो सकती है। फिर भी विशेष स्थानों का विशेष महत्त्व बना रहेगा। गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सिद्ध पुरुषों के संरक्षण की त्रिविध विशेषताएँ जिन्हें भी उपलब्ध होती हैं, वे अपनी साधना को सिद्धि में बदलने में अधिक सफलता प्राप्त करते देखे गये हैं।

इस प्रयोजन के लिये हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है, इसलिए कितने ही मुमुक्षु इस क्षेत्र में अन्न–जल–आच्छादन की सुविधा देखकर अपने काम–चलाऊ कुटीर बना लेते हैं। उनमें साधनारत रहते हैं। कभी–कभी इन साधकों में कुछ सम्पन्न जन भी होते हैं। वे प्रेरणा पर उन्हीं कुटीरों के ईर्दगिर्द देवालय बना देते हैं। कालान्तर में वह किसी पुरातन कथा–प्रसंग से जुड़ जाता है, दर्शनार्थी आने लगते हैं और भूमि का, भवन का, परिवार का विस्तार होने लगता है। कई साधन सम्पन्न ऐसे स्थानों में अपने दान का स्मारक बनाने में अधिक उपयोगिता समझते हैं। घने शहरों में घिचपिच अनेकों देवालय, धर्मशालाएँ बने रहते हैं। उनके बीच किसी एक का विशेष स्मरण रह सकना सम्भव नहीं होता। यश न हो, तो दानी अपने व्यय को क्यों सार्थक माने ? इस दृष्टि से हिमालय के वीरान क्षेत्र में देवालयों की स्थापना अधिक आकर्षक बन जाती है, विशेषतया तब, जबकि उसके साथ किसी पौराणिक कथा–गाथा का इतिहास जुड़ सके।

हिमालय का उत्तराखण्ड देवात्मा भाग वस्तुतः तपोवन है। उसमें तीर्थ स्तर की सुविधाएँ नहीं हैं। तीर्थों में आमतौर से गुरुकुल, आरण्यक और साधना आश्रम हुआ करते थे। उनमें सत्संग–स्वाध्याय की, निवास–विश्राम की व्यवस्था रहती थी। अभी भी ऐसे तीर्थों के कितने

ही प्रतीक चिह्न जहाँ–तहाँ विद्यमान हैं, किन्तु हिमालय में समतल भूमि की व्यवस्था नगण्य होने के कारण वैसी बड़ी व्यवस्था का सुयोग नहीं बनता रहा है। छोटे–छोटे कुटीर और आश्रम भर सम्भव होते रहे हैं, उनमें व्यक्तिगत साधनायें इस दृष्टि से होती हैं कि अन्तराल में समाहित प्रसुप्त शक्तियों का जागरण संभव हो सके, दिव्य वातावरण मिलता रह सके और उस भूमि की उर्वरता में उनका व्यक्तित्व बीज रूप से समुन्नत होते–होते समर्थ–सम्पन्न हो सके, साधना बढ़ते–बढ़ते सिद्धि स्तर तक पहुँच सके।

इन दिनों देवालयों के संरक्षक, संचालक, पुजारियों का उस क्षेत्र में बाहुल्य है। साधना की दृष्टि से प्रायः गर्मी के दिनों में ऋतु अनुकूलता का लाभ उठाने के लिए कुछ लोग साधक के रूप में भी निवास करते हैं, पर जैसे ही ठण्ड बढ़ती है नीचे गरम एवं सुविधाजनक क्षेत्रों में उतर आते हैं। हरिद्वार, ऋषिकेश तो इन लोगों से प्रायः हर ऋतु में भरा रहता है। सुविधाएँ उन्हें यहाँ ठहरने के लिए आकर्षित करती रहती हैं। घोर शीत के दिनों में हिमालय का देवात्मा क्षेत्र प्रायः खाली हो जाता है। जीवट वाले गृहस्थ और साधक ही उस क्षेत्र में रुक पाते हैं। दीवाली से होली तक के साढ़े चार महीने उस क्षेत्र में जाने पर सन्नाटा ही दृष्टिगोचर होता है।

तीर्थयात्रा के लिए अब यह क्षेत्र विस्तार प्राप्त करता जाता है। हर वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में तीर्थयात्रियों की संख्या बढ़ जाती है। निवास, यातायात के विनिर्मित साधन अगले वर्ष फिर कम पड़ जाते हैं। यों देश भर में अन्यत्र भी अनेक तीर्थ हैं, पर उनमें से अधिकांश घनी आबादी के बीच बसे हैं। इसलिए पर्यटकों को जहाँ पिच–पिच का, स्थानाभाव का, मँहगाई का, वाहनों की कमी का सामना करना पड़ता है, वहाँ चोर–उचक्कों के छल–छद्म भी कम हैरान नहीं करते। इन सबसे उत्तराखंड के तीर्थों में अपेक्षाकृत कम परेशानी उठानी पड़ती है। वन, पर्वत, नदी, झरने, सुहावने लगते हैं, साथ ही भीड़ भी अपेक्षाकृत कम

मिलती है। सुन्दर दृश्य और आकर्षक वातावरण सहज समझा देता है कि तीर्थयात्रा के उद्देश्य से इस क्षेत्र को प्रमुखता दी जाय। यही कारण है कि इस क्षेत्र में पर्यटक अधिक संख्या में आने लगने का क्रम चल पड़ा है। यात्रियों के कारण व्यापार भी चलता है और मजदूरी भी अच्छी मिलती है। इस दृष्टि से पहाड़ी क्षेत्रों की आबादी भी सुनसान क्षेत्र की तुलना में वहाँ ज्यादा बढ़ने लगी है। जहाँ सड़कें बन गयी हैं, कस्बे बस गये हैं, व्यापार होने लगा है। यह मार्ग और क्षेत्र इस दृष्टि से विकसित हुए हैं, कि वहाँ यात्रियों को, वहाँ के निवासियों का सहयोग मिले और निवासी यात्रियों के सहारे अपनी आजीविका का सहज उपार्जन कर सकें। संक्षेप में यही है वह प्रगति, जिसे पर्वतीय क्षेत्रों का, विशेषतया तीर्थ क्षेत्रों का विकास भी कह सकते हैं।

आर्थिक एवं सुविधा सम्वर्धन की दृष्टि से इस विकास को सराहा जा सकता है। घाट, पुल, सड़क, पगडंडी, व्याषार, उत्पादन, कृषि, उद्योग आदि का भी विस्तार होता जा रहा है। यद्यपि इस प्रगति के कारण वन भाग में कटौती होती चली जा रही है और बाढ़–भूस्खलन जैसी समस्याएँ क्रमशः बढ़ ही रही हैं।

इस प्रगति के साथ–साथ एक अवगति भी हुई है कि मनुष्य द्वारा अधिकृत क्षेत्र से दिव्य जड़ी–बूटियों का, वन्य जीवों का, महत्त्वपूर्ण वृक्षों का पलायन होता जा रहा है। धन की आवश्यकताओं के लिए, मकान बनाने के लिए पेड़ कटते जा रहे हैं। जहाँ कभी वनस्पतियाँ उगती थीं, वहाँ कृषि होने लगी है। वन्य पशु भीड़ से घबराकर एकान्त मिले, वैसा क्षेत्र खोजने के लिए पलायन कर चल पड़े हैं। वन क्षेत्र की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ बढ़ते भौतिक विकास के साथ–साथ घटने भी लगी है।

सबसे बड़ी कमी हुई है, उस क्षेत्र में विचरण करने वाले सिद्ध पुरुषों की। वे मात्र शीतलता के लिए ही यहाँ नहीं बसते थे, वरन् सबसे बड़ी उपलब्धि थी–निस्तब्धता। वह एकान्त में ही मिल पाती है। कोलाहल और घिचपिच का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है। फिर जिनमें व्यवसाय

बुद्धि ही प्रधान है, वे जन साधारण में पाये जाने वाले दोष–दुर्गुणों से भरे रहते हैं। प्रवृत्तियाँ भी क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। योगी, तपस्वी यदि वातावरण में उत्कृष्टता का संचार करते हैं, तो गये–गुजरे व्यक्ति उसमें प्रदूषण भी करते हैं। कमल पुष्पों में रमण करने वाले भ्रमर दुर्गन्धित स्थानों में घुटन अनुभव करते हैं और वहाँ टिकने के लिए उद्यत नहीं होते, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष भी कोलाहल भरे व्यवसाय बुद्धि से अनुप्राणित क्षेत्र में टिक नहीं सकते। कोई समय था, जब उत्तराखण्ड क्षेत्र में मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्र में भी जब–तक सिद्ध पुरुषों का साक्षात्कार किन्हीं सौभाग्यशालियों को हो जाता था, उनका परामर्श और सहयोग मिल जाया करता था, पर अब वैसा नहीं होता। इस प्रयोजन के लिए जो लोग उधर जाते हैं, उन्हें निराश ही वापस लौटना पड़ता है।

असल की नकल बनाने में दुनियाँ बड़ी प्रवीण है। नकली रेशम, रत्न, नकली घी, नकली आँख, नकली दाँत तक बाजार में बहुलता के साथ सस्ते मोल में मिलते हैं। उनका विज्ञापन भी किया जाता है; ताकि सस्ते के लोभ में कम समझ वाले ग्राहकों को आसानी से आकर्षित किया जा सके। जन संकुल क्षेत्र के आस–पास अड्डे बनाकर बस जाने वाले नकली सन्तों और सिद्ध पुरुषों की भी बाढ़ जैसी लगी है। भावुक श्रद्धालु लोग आसानी से इनके चंगुल में फँसते हैं। पुरातन मान्यताओं के अनुरूप उनकी मनोभूमि तो बनी ही होती है, फिर सहज प्राप्ति का प्रलोभन किसी से किस प्रकार छोड़ते बने। चिड़िया जाल में और मछली कटिया में इसी सस्ते प्रलोभन के कारण फँसती है। सिद्ध पुरुषों की तलाश में निकले व्यक्ति भी आमतौर से इसी भ्रमजाल में फँसकर अपना समय, मन और धन खराब करते हैं।

कितने ही भावुकजनों की अभिलाषा होती है कि सिद्ध पुरुषों से भेंट का सुयोग किसी प्रकार उन्हें मिले। इस कामना के पीछे मोटे रूप से तो उनकी भक्ति भावना ही दिखाई पड़ती है, पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं। वे दर्शन मात्र के अभिलाषी नहीं होते। वे उनका कोई कौतूहल–चमत्कार

देखना चाहते हैं। चमत्कार देख चुकने पर उन्हें इस बात का भरोसा होता है कि यह सिद्ध पुरुष है या नहीं। इससे कम प्रदर्शन के बिना उन्हें इस बात का भरोसा ही नहीं होता है कि यह कोई दिव्य आत्मा है या नहीं। जब कुछ अचम्भा, अनोखा, जादू–तमाशे जैसा कोई कौतुक दीख पड़े, तब उसके बाद अपने मन की गाँठ खोलते हैं। गाँठ में कामनाएँ, ललक, लिप्साएँ भरी होती हैं। प्रचुर धन, खोया हुआ यौवन, बल, सौन्दर्य, अधिकार, यश, प्रतिष्ठा, विजय, शत्रु नाश जैसी कामनाएँ जब अपने पुरुषार्थ के बलबूते पूरी नहीं हो पातीं, तो उसकी पूर्ति देवताओं या सिद्ध पुरुषों से चाहते हैं। देव पूजन आये दिन होता रहता हैं। जप, अनुष्ठान, पूजन, अर्चन का सिलसिला लम्बी अवधि तक चलने पर भी जब मनोरथ पूरा नहीं होता, तो एक ही संभावना शेष रहती है–वे आकांक्षाएँ किसी सिद्ध पुरुष के अनुग्रह से पूरी हों। अनुग्रह का विश्वास तब हो, जब उनके प्रत्यक्ष दर्शन चर्म–चक्षुओं से हो सकें, आमने–सामने का वार्तालाप बन पड़े।

कुछ की आशंका कुछ और बड़े स्तर की होती है। वे स्वयं सिद्ध पुरुष बनना चाहते हैं। इसके लिए साधना करने का मूल्य तो चुकाना नहीं चाहते, वरदान–आशीर्वाद मात्र से ऋद्धि–सिद्धियों का विपुल भण्डार झोली में भरना चाहते हैं। इन्हीं कामनाओं की पूर्ति के लिए आम लोग सिद्ध पुरुषों की तलाश में जहाँ–तहाँ भटकते रहते हैं।

# सिद्ध पुरुषों का स्वरूप और अनुग्रह

समुद्र को यों अचल, स्थिर माना जाता है। फिर भी वह गतिविधियों से रहित नहीं रहता। उसके विभिन्न स्वरूप भी बनते रहते हैं। ऊँची–नीची लहरें, ज्वार–भाटे, तूफान, भँवर आदि के कारण वह चंचल भी दिखाई पड़ता रहता है। सूर्य की ऊर्जा एक है। अपनी सौर मण्डल परिधि में वितरित होती रहती हैं, पर उस एकरसता में भी अन्तर आता रहता है। समीपवर्ती बुध अग्नि पिण्ड की तरह तपता है, जब कि मध्यवर्ती दूरी वाले पृथ्वी, मंगल जैसे ग्रहों में सहज तापमान रहता है। दूरवर्ती नेपच्यून, प्लूटो जैसे ग्रह सदा शीतल ही रहते हैं। उन तक सौर ताप स्वल्प मात्रा में ही पहुँचता है। परब्रह्म की एकता, अखण्डता और समस्वरता में कोई व्यवधान नहीं पड़ता, पर परिस्थितियों के अनुरूप उसकी विराट् सत्ता हलचल रहित नहीं होती। उसकी इच्छा एवं व्यवस्था को पूरा करने के लिए विविध माध्यम भी अपना–अपना काम करते रहते हैं। उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन की त्रिविध प्रक्रियाएँ तो अपने ढंग से चलती ही रहती हैं। फिर भी समय–समय पर बादलों का उठना, बरसना, मेघों का कड़कना, चमकना, तूफान, अन्धड़, चक्रवात जैसे दृश्य भी प्रकृति क्षेत्र में दीख पड़ते हैं। यों ब्रह्म की तरह प्रकृति को भी शान्त और व्यवस्थित माना जाता है। पवन सर्वदा एक नियत प्रवाह में बहता है; किन्तु उसमें भी यदा–कदा जहाँ–तहाँ भयंकर चक्रवात और तूफान उठते देखे गये हैं। ऋतु प्रभाव से उसका तापमान भी न्यूनाधिक हो जाता है। इसी को कहते हैं एकता के बीच अनेकताओं का रहना। अनेकताओं के बीच एकता के दर्शन करना। पृथ्वी गोल है फिर भी उसमें पर्वतों, खंदकों की कमी नहीं। द्वीपों महाद्वीपों के कारण वह छिन्न–भिन्न एवं अनेक रूपों

में बँटी हुई भी दीखती है। इसे नियन्ता की, उसकी इच्छा या व्यवस्था की विचित्रता ही कह सकते हैं।

परब्रह्म एक है। उसे विराट् विश्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप में भी देखा जा सकता है। भूलोक अथवा ब्रह्माण्ड उसकी प्रत्यक्ष छवि है। इस विशालता में चलती रहने वाली विभिन्न हलचलों के क्रियान्वयन में उसकी विभिन्न सामर्थ्यें काम करती रही हैं। उसी प्रकार जैसे कि शरीर के अनेक अवयव मिलजुलकर जीव चेतनाओं के अनुशासन में काम करते रहते हैं। प्रकृति में ताप, ध्वनि और प्रकाश की शक्तियाँ सक्रिय पंचतत्त्वों, पाँच प्राणों का अपना एक विशिष्ट परिकर है, जो जीवधारियों के उत्पादन, अभिवर्धन में कार्यरत रहता है।

विश्व व्यवस्था के चेतना क्षेत्र को गतिशील बनाने में पराशक्ति के कितने ही सचेतन घटक हैं। इनमें सर्वोच्च स्तर के हैं—देव। जो ब्रह्म चेतना के अतीव निकट एवं उसके साथ जुड़े हुए माने जाते हैं। उनकी संरचना अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष है। वे ईश्वर इच्छा व्यवस्था को कार्यान्वित करने में संदेश– वाहक की भूमिका निभाते हैं। असंतुलनों को सँभालते हैं। क्षतियों की पूर्ति करते हैं। अनौचित्य को औचित्य में बदलते हैं। जीवात्माएँ उनका आश्रय लेकर परम तत्त्व तक पहुँचने में सुविधा अनुभव करती हैं। सीढ़ियों पर पैर रखते हुए छत तक पहुँच जाना भी तो सरल पड़ता है। प्राणियों के संकटों एवं अभावों की पूर्ति के लिए वे ब्रह्मतत्त्व से आवश्यक समर्थता एवं सम्पन्नता उपलब्ध करके अभावग्रस्तों को उपलब्ध कराते रहते हैं। उनका प्रधान कार्य ही संतुलन बनाये रखना है। जब कभी उसमें बिगाड़ आता है, तो उसका समाधान करने के लिए उनकी दौड़—धूप विशेष रूप से क्रियाशील होती देखी जाती है। यह देव ही जब—तब अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं। समूची ब्रह्म सत्ता तो अपना व्यापक रूप यथावत् ही बनाये रहती है। निराकार को साकार नहीं बनना पड़ता। उस प्रयोजन को देवशक्तियाँ ही निपटा देती हैं।

देव समुदाय का दूसरा वर्ग ऐसा है जो प्रकृति के जन समुदाय के

अधिक निकट है। मनुष्यों में, क्षेत्रों में, व्यवस्थाओं में उसकी विशेष दिलचस्पी होती है। अपनी सीमित सामर्थ्य के अनुरूप वह बिना प्रमाद किये अपना कर्तव्य पालन भी करता रहता है। इस समुदाय में यक्ष, गन्धर्व और सिद्ध पुरुष आते हैं। यक्ष, गन्धर्व सुरक्षित सेना की तरह हैं, उन्हें कार्य में तभी जुटना पड़ता है, जब कहीं कोई महत्त्वपूर्ण कार्य पड़ता है। इन्हें दिक्पाल या दिग्गज के नाम से भी जाना जाता है। अन्तर्ग्रही विपत्तियों से वे पृथ्वी को बचाते हैं। अभावों को जहाँ–तहाँ से पूरा करते हैं। गन्धर्व उल्लास के कर्णधार हैं। शरीर को जिस प्रकार अन्न–वस्त्र की, मस्तिष्क को जिस प्रकार ज्ञान–अनुभव की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार अन्तःकरण उल्लास भरा विनोद–मनोरंजन चाहता है। कला का प्रयोजन यही है। वसन्त इसका प्रतिनिधित्व करता है। सौन्दर्य एवं माधुर्य इसका सहचर है। काम–कौतुक में भी उसका हस्तक्षेप है, यह गन्धर्व क्षेत्र है। यह शक्तियाँ भी अपने ढंग से हर प्राणी को जिस–तिस सीमा तक अनुदान जुटाते रहते हैं। देव, यक्ष और गन्धर्व उच्च लोक के वासी, उच्च भूमिकाएँ निभाने वाले माने गये हैं। वे पात्रता के अनुरूप अहैतुकी कृपा करते रहते हैं। कभी–कभी आराधना, अनुष्ठान से भी आकर्षित होते और अनुग्रह करते देखे गये हैं।

भूलोक वासी प्राणियों से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले, उनके कार्यों में अधिक रुचि लेने वाले, अधिक सहयोग करने वाले दो वर्ग हैं– एक सिद्ध पुरुष, दूसरे पितर। दोनों के शरीर तो सूक्ष्म होते हैं और वे आवश्यकतानुसार अपना परिचय स्थूल शरीरधारियों जैसा भी देने लगते हैं। पर उनकी सत्ता, महत्ता, शक्ति एवं इच्छा के बीच असाधारण अन्तर पाया जाता है, फिर भी दोनों की गणना सूक्ष्म शरीरधारी मानव स्तर से कुछ ऊँची उठी हुई आत्माओं से ही की जा सकती है।

सिद्ध पुरुष योग और तप का आश्रय लेकर अपने स्थूल शरीर का ही सूक्ष्मीकरण कर लेते हैं। यह भी हो सकता है कि वे कचरे जैसे शरीर का परित्याग कर दें और सूक्ष्म शरीर द्वारा उन कार्यों में संलग्न हों, जो

लोक मंगल के लिए नितान्त आवश्यक हैं। शरीर के सीमा बंधन में बँधे रहने पर जीवात्मा को जहाँ कई प्रकार की सुविधा सरसता का लाभ मिलता है, वहाँ यह कठिनाई भी है कि कार्य उतना ही हो सकता है जितना कि काया को सीमित शक्ति के अन्तर्गत बन पड़ता है। सूक्ष्म शरीर के सक्रिय हो उठने पर वे सारे व्यवधान दूर हो जाते हैं, जो शरीर को सीमित एवं आधि–व्याधि ग्रसित बनाये रहते थे। सीमा टूट जाने पर वे अपने को असीम अनुभव करते हैं। जीवित स्थिति के साधक जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमताओं के रूप में प्राप्त करके गौरवान्वित होते हैं, उससे अनेक गुनी दिव्य शक्तियाँ सूक्ष्म शरीरधारी सिद्ध पुरुषों को अनायास ही ऋद्धि–सिद्धियों के रूप में मिल जाती है। वे स्थूल कार्यों को या तो पूर्णतया परित्याग कर देते हैं या फिर उसे अपने प्रबल अध्यात्म प्रयत्नों द्वारा सूक्ष्म कर लेते हैं। सूक्ष्म शरीर की जीवन अवधि असीम है। वह युग–युगान्तरों तक भी उसी स्थिति में रह सकता है। आवश्यकतानुसार वे अपने पुराने शरीर को धारण कर सकते हैं या अन्य किसी भी आकृति को धारण करके अपने अस्तित्व एवं पराक्रम का परिचय दे सकते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुष प्रकारान्तर से उच्च कोटि के योगी हैं, जिनकी क्षमता देवलोक के साथ जुड़ी है और क्रियाशीलता लोकहित के कामों में लगी रहती है। उनकी भूमिका, जिम्मेदारी उद्यान के माली जैसी होती है। वे विशाल अन्तरिक्ष में कहीं भी रह सकते हैं, आवश्यकतानुसार कहीं भी पहुँच सकते हैं। पर पाया यही गया है कि वे निर्धारित जिम्मेदारी को पूरा करने के उपरान्त वापस हिमालय के देवात्मा क्षेत्र में ही लौट आते हैं। वहाँ विश्राम करते हैं, थकान उतारते हैं और गँवाई शक्ति को पूरा करने के लिए अथवा भविष्य के लिए सामर्थ्य संचय करने के लिए अपने ढंग की विशेष साधना आरंभ कर देते हैं। खाली समय को वे स्वेच्छाचार में नहीं बिताते, वरन् योजनाबद्ध रूप से उसके द्वारा उच्चस्तरीय शक्ति संचय का प्रयास करते रहते हैं; ताकि समय की पुकार पर किसी भी क्षेत्र में उन्हें जो भी प्रेरणा मिले उसे बिना हिचक क्रियान्वित कर सकें।

इसी अवधि में उनका एक कार्य और भी होता है– वंश वृद्धि। वे भी परब्रह्म की तरह एक से अनेकों को अपने सदृश बनाना चाहते हैं। अपने संचित अनुदानों का एक बड़ा अंश उन्हें प्रदान भी करते रहे हैं। अभिभावक यही करते हैं। संतान पर अपना समय–मनोयोग एवं वैभव निःसंकोच लुटाते हैं। अल्प समर्थों को अति समर्थ बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। हर पिता अपनी संतान को अपने ही सदृश तथा अपने से भी अधिक बढ़ा–चढ़ा देखना चाहता है। अभिभावकों और सन्तान के बीच इसी आधार पर आदान–प्रदान चलता रहता है और कई सौभाग्यशाली उत्तराधिकारियों को सहज ही धनाध्यक्ष बनने की तरह सिद्ध पुरुषों के अनुग्रह से वह असाधारण क्षमताएँ एवं सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं, जो निजी प्रयत्नों से कदाचित् ही उपलब्ध हो पाता है।

सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा–सहायता प्राप्त करने के लिए कितने ही लोग लालायित फिरते हैं। उमके दर्शन करने और चमत्कार देखने के लिए आतुर फिरते हैं। इसके लिए वन, पर्वतों की खाक छानते हैं, पर ऐसे लोगों को असफलता ही मिलती है; क्योंकि दिव्यदर्शी सिद्ध पुरुष घट–घट को जान लेते हैं। उनका क्षुद्र मनोरथ ऐसा होता है जिसे परखने में उन्हें तनिक भी कठिनाई नहीं होती। वे मदारी के हाथ की कठपुतली बनने में अपना अपमान अनुभव करते हैं। फिर क्षुद्रजनों के मनोरंजन या कामनापूर्ति के लिए ये क्यों अपना तप या समय खराब करें। वे भली प्रकार जानते हैं कि उन्हें अपना बहुमूल्य अनुग्रह किस व्यक्ति को किस काम के लिए प्रदान करना है। ऐसे सत्पात्रों को वे स्वयं तलाशते फिरते हैं। जहाँ खिला कमल दीखता है उस पर भौरों की तरह वे स्वयं जा पहुँचते हैं। उद्देश्य स्पष्ट है प्रामाणिक प्रतिभावानों को सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन में जुटाने के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करना। यह हर किसी से करते नहीं बन पड़ता। जिनने पहले से ही अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को उदार, साहसिकता से ओत–प्रोत कर रखा है, जिनने संयम साधा है, लोभ, मोह, अहंकार से छुटकारा पाया है, उन

निस्पृह व्यक्तियों से ही यह आशा की जा सकती है कि लोकमंगल की साधना में निरत हो सकेंगे। पुण्य प्रयोजनों के लिए अपने श्रम, समय, मनोयोग एवं साधनों को लगायेंगे। इस स्तर की उत्कृष्ट प्रामाणिकता को सिद्ध करने में जिन्होंने अनेकों बार अग्नि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। उन्हें ही देव पुरुष दिव्य प्रयोजनों के लिए वरण करते हैं। दर्शन या अनुग्रह उन्हें ही प्रदान करते हैं। करने के बाद यह भी देखते रहते हैं कि जो दिया गया है वह पुण्य प्रयोजनों में लगा या नहीं। जिन्हें मात्र स्वार्थ ही नशे की तरह सवार है, उनकी क्षुद्रता दुर्गन्ध की तरह उड़ती रहती है और किसी सिद्ध पुरुष के समीप पहुँचने पर उसे समीप नहीं आने देती। हेय मनोभूमि के लोग ललक–लिप्साओं की पूर्ति के लिए सिद्ध पुरुषों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए बहेलियों की तरह जाल सजाये फिरते हैं; पर वे राजहंस परमहंस ऐसे हैं, जो यह भली–भाँति जानते हैं कि कुपात्रों और सुपात्रों की सहायता करने पर उसके क्या बुरे–भले परिणाम होते हैं। कुपात्रों के हाथ पहुँची दिव्य शक्ति वैसे ही विग्रह खड़े करती है, जैसे कि भस्मासुर, मारीच, रावण, हिरण्यकश्यप, महिषासुर आदि के हाथों सिद्धियाँ पहुँचने में अनर्थ खड़े हुए हैं। सिद्धों को तलाशने के लिए जहाँ–तहाँ मारे–मारे फिरने वाले निश्चित रूप से खाली हाथ लौटते हैं। वे असफलता के उपहास से बचने के लिए मन गढ़ंत झूठे उपाख्यान गढ़ लेते हैं और भोले–भावुक जनों पर अपनी धाक जमाने के लिए उन मन गढ़ंतों का प्रचार करते हैं कि उनकी अमुक क्षेत्र में किन्हीं सिद्ध आत्माओं से भेंट हुई। उनने यह दिया, यह कहा आदि। ऐसी मन गढ़ंत बातें अनेकों के मुँह सुनी जाती हैं, और किम्वदन्ती के रूप में जहाँ–तहाँ प्रचारित होते हैं। इनकी सच्चाई जाँचने के लिए एक कसौटी है कि भेंट करने वाला उत्कृष्ट चरित्र का विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न था या नहीं। उसने दिव्य अनुग्रह को पाकर लोक मंगल के लिए कोई महत्त्वपूर्ण त्याग, पुरुषार्थ किया या नहीं।

❁

# सूक्ष्म शरीरधारियों से सम्पर्क

सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं में घटिया वर्ग उन प्रेत-पितरों का होता है, जो मरते समय कोई बड़े उद्वेग या मनोरथ लेकर मरे। अभाव, वियोग, अकाल मृत्यु जैसी पीड़ा, ललक-लिप्सा, प्रतिशोध आदि के कारण जो उद्विग्न मनःस्थिति में शरीर त्यागने को विवश हुए हैं, वे नया जन्म पाने से पूर्व बहुत समय तक प्रेत बनकर रहते हैं। उन्हें उद्विग्नता का वातावरण पसन्द आता है। उसी में रस लेते हैं। वैसा ही दृश्य देखने में सन्तोष अनुभव करते हैं। अपने प्रयत्नों से वैसा वातावरण विनिर्मित करते हैं।

उनके कृत्य दूसरों को सताने वाले होते हैं। स्वयं डरते और दूसरों को डराते रहते हैं। सूक्ष्म शरीरधारी होने से इतनी सामर्थ्य उनमें भी होती है कि कोई आकार बनाकर स्वप्न में अथवा जाग्रत् होने पर दिवा स्वप्न की स्थिति में दूसरों के सामने प्रकट हो सकें। इनके छद्‌म रूप भी होते हैं। वे किसी की सहायता कर सकने की स्थिति में नहीं होते। उलटे याचनाएँ ही करते हैं। सताये जाने पर किन्हीं के भयभीत होने पर वे तृप्ति भी अनुभव करते हैं।

पितर सभ्य होते हैं। मरते समय जिनकी मंगलमयी कामनाएँ अधूरी रहीं, वे भी अशान्त स्थिति में सूक्ष्म शरीरधारी बनकर आकाश में भ्रमण करते हैं। उस स्थिति में भी उनकी इच्छा अधूरे संकल्प को पूरा करने की रहती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए उनकी चेष्टा भी चलती है। किसी उपयुक्त व्यक्ति के साथ जुड़ जाने का वे प्रयत्न करते हैं। साथी-सहयोगी भी तलाश करते हैं। मिल जाता है तो उसके साथ अपनी सामर्थ्य जोड़ते हैं। इस संयोग के बल पर ऐसे काम कराते हैं जो उनकी अधूरी इच्छा की दिशा में किसी सीमा तक अग्रसर हो सके। लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, व्यवसायी, परमार्थी जैसी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों में ही उनका मन रमा होता है। स्थूल शरीर न होने के कारण वे स्वयं तो

कुछ प्रत्यक्ष पुरुषार्थ कर नहीं सकते। पर किसी उपयुक्त सत्पात्र के साथ संयोग बिठाकर उसे योजना बताते, ऐसी राह चलाते हैं; ताकि अपने अधूरे मनोरथ को पूरा होने जैसे दृश्य देख सकें।

ऐसे पितरों का संयोग भी कभी–कभी सिद्ध पुरुषों के अनुग्रह जैसा प्रतीत होता है। इस संदर्भ में हुई भ्रान्ति को इस आधार पर जाना जा सकता है कि पितरों की इच्छाएँ भौतिक सफलताओं की दिशा में किसी को अग्रसर करती हैं। मार्ग बताती हैं और अपनी सीमित सामर्थ्य के अनुरूप यथासम्भव सहायता भी करती हैं। बस इतनी ही उनकी परिधि होती है। सिद्ध पुरुष मात्र उत्कृष्ट चरित्र, संयमी, तपस्वी, सन्तोषी और परमार्थ परायणों के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं। अपनी अति महत्त्वपूर्ण तप, सम्पदा का एक भाग देकर अनुगृहीत को इस योग्य बनाते हैं कि वह निजी सामर्थ्य कम पड़ने पर भी उस अनुदान के सहारे पुण्य परमार्थ के निमित्त कोई बड़े कदम उठा सके। बढ़–चढ़कर काम कर सके। प्रतिकूलताओं के बीच रहकर भी यशस्वी हो सके। बड़े त्याग–बलिदान करके असंख्यों के लिए मार्गदर्शक बन सके। अपने कृत्यों को अनुकरणीय, अभिनन्दनीय बना सके। जहाँ ऐसा कुछ घटित होता दीखे, समझना चाहिए कि किसी तपस्वी सिद्ध पुरुष की अनुकम्पा उसे उपलब्ध हुई है। व्यक्तिगत भौतिक सफलताओं में श्रेय मिल रहा हो, तो समझा जा सकता है कि किसी पितर का अनुग्रह प्राप्त हुआ हैं। अदृश्य दर्शन तो घटिया स्तर के प्रेत भी करा देते हैं। वे मनुष्य या किसी प्राणी के शरीर में अपने अस्तित्व का परिचय दे सकते हैं। कुछ ऐसा परामर्श सहयोग भी दे सकते हैं, जो आरम्भ में भले ही आकर्षक लगे, पर पीछे दुष्परिणाम ही खड़े करे।

यक्ष–गन्धर्व कभी–कभी दीख तो पड़ते हैं, पर वे मनुष्यों के प्रत्यक्ष जीवन में कोई विशेष सहयोग नहीं देते। प्रकट भी नहीं होते। विचार क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण उत्पादन खड़ा करते हैं। समूहों के लिए भी उनकी प्रेरणाएँ काम करती हैं। युग का प्रवाह बदलने में यक्ष–गन्धर्वों का

प्रकटीकरण कदाचित् ही देखा जाता है। प्रेत–पितरों के क्रिया–कलाप जिस–तिस रूप में सामने आते रहते हैं, पर उनका उद्देश्य और क्षेत्र छोटा ही होता है।

सिद्ध पुरुषों को सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि कहना चाहिए। यों भी तपस्वी जब तक स्थूल शरीर धारण किए रहते हैं, तब तक उन्हें ऋषि कहते हैं। जब वे स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर में अवतरित होते हैं, रहने लगते हैं, तब वे दिव्य पुरुष बन जाते हैं। इन्हीं को सिद्ध पुरुष भी कहते हैं। इन्हें देव और मनुष्य की मध्यवर्ती स्थिति में रहने वाले समझा जाता है। साधारणतया वे अदृश्य ही रहते हैं; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर स्थूलकाय कलेवर भी धारण कर लेते हैं। जिस शरीर से तप किया और सिद्धि पाई है, वह उन्हें प्रिय भी लगता है और उसे प्रकट करना भी सरल पड़ता है। इसलिए जब कभी किन्हीं को उनका दर्शन होता है, तो वही काया सामने आती है। उतनी ही वय दृष्टिगोचर होती है जितनी में उनने स्थूल शरीर का सूक्ष्मीकरण किया था। इस परिवर्तन के दोनों ही स्वरूप हो सकते हैं। एक यह कि अवधारित शरीर को उसी प्रकार अलग कर दिया जाय, जिस प्रकार सर्प केंचुली छोड़कर नई त्वचा वाली स्फूर्तिवान् काया का उपयोग करता है। छोड़ा हुआ शरीर नष्ट भी किया जा सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि स्थूल का धीरे– धीरे परित्याग करते–करते स्थिति मात्र उतनी ही रहने दी जाय, जिससे कि सूक्ष्म ही शेष रहे। तत्त्वतः सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शरीरधारी ही होते हैं। आवश्यकतानुसार कभी–कभी वे शरीर में भी प्रकट होते हैं। ऐसा विशेषतया तब होता है, जब उन्हें किसी या किन्हीं शरीरधारियों के साथ सम्पर्क बनाने, वार्तालाप करने की आवश्यकता होती है।

प्रकट होना या न होना यह पूर्णतया उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। किसी के आग्रह अनुरोध का उन पर कोई दबाव नहीं पड़ता। कारण कि सिद्ध पुरुष मात्र उच्च उद्देश्य की पूर्ति को ही ध्यान में रखते हैं; जब कि सामान्यजन कौतुक–कौतूहल देखने, चमत्कारों का रस लेने, मनोकामना

पूरी कराने के फेर में रहते हैं। इस स्तर की निकृष्ट मनोभूमि के दर्शन अभिलाषा में भी घोर स्वार्थ ही भरा होता है। उसे वे कुचक्र भर समझते हैं और अपने को उस जाल में फँसाने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। उन्हें मात्र उन्हीं के सम्मुख प्रकट होने की उपयोगिता प्रतीत होती है, जिन्हें महत्त्वपूर्ण परामर्श देने पर उसकी पूर्ति हो सकने की पात्रता परिलक्षित होती है। कोई अपनी बेटी को कुपात्र वर के हाथों जानबूझकर नहीं सौंपता। फिर दिव्यदर्शी आत्मायें अपना अत्यन्त कष्टपूर्वक कमाया हुआ तप किसी के चाहने भर से प्रभावित होकर देने के लिए क्यों कर सहमत हो सकते हैं?

यों सिद्ध पुरुषों का शरीर सूक्ष्म होने के कारण उन्हें आकाश गमन की सिद्धि होती है। वे इच्छानुसार चाहे जिस क्षेत्र या स्थान में तत्काल जा पहुँचते हैं; फिर भी वे पतंग की तरह नहीं उड़ते फिरते। किसी या किन्हीं स्थानों को अपने लिए नियत करते हैं जहाँ वे शक्ति संचय के लिए तप करते रहते हैं, जो स्थूल शरीरधारियों के विधि–विधानों से सर्वथा भिन्न होता है। सूक्ष्म शरीर के साथ तन्मात्राएँ जुड़ी होती हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में सूक्ष्म शरीर की भी आसक्ति हो सकती है। यह कामनाएँ प्रकारान्तर से बन्धन में बाँधती हैं। विशालता को संकुचित करती हैं। इसलिए इन्हें भी उसी प्रकार काटना पड़ता है, जैसा कि स्थूल शरीर में जिस प्रकार वासना–तृष्णा के, लोभ–मोह के बन्धन बाँधते हैं। ये समुन्नत स्तर तक व्यक्तित्व को नहीं पहुँचने देते हैं। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरधारियों के लिए तन्मात्राओं के बन्धन जकड़ लेते हैं और अधिक ऊँची आत्मिक स्थिति पर अग्रगामी नहीं बनने देते। एकाग्रता को चंचलता में बदलते हैं। ऐसी स्थिति में वे देवात्मा बनने की स्थिति में नहीं पहुँच पाते। इसलिए तप का आश्रय उन्हें भी लेना पड़ता है– अपूर्णताओं को पूर्णता में विकसित करने के लिए। इसलिए उन्हें भी अपने लिए साधना हेतु उपयुक्त स्थान चुनना पड़ता है।

स्थान चयन में उन्हें दो तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। एक यह

कि वह कोलाहल रहित हो। प्रकृति की स्वाभाविक निस्तब्धता में किसी कारण विक्षेप न पड़ता हो। दूसरे यह कि जब भी सूक्ष्म शरीर को स्थूल आकार में बदलना पड़े, तब उसके लिए आवश्यक ताप और आहार उपलब्ध हो सके। इसके लिए गुफाएँ उपयोगी पड़ती हैं। वे पर्वतों के फैलने–सिकुड़ने से बन जाती हैं। उनमें से कितनी ही ऐसी भी होती हैं, जिनमें सूक्ष्म शरीरधारी ही नहीं स्थूल शरीर वाले प्राणी भी शीतकाल में तन्द्रित स्थिति में रहकर गुजार सकें। पत्थरों में भी कुछ ऐसे होते हैं, जिसमें चुम्बकीय गुण होते हैं। उन्हें परस्पर रगड़ने, टकराने से अग्नि प्रकट की जा सकती है। गुफाओं के भीतर शैवाल स्तर की काई और घास की मिली हुई वनस्पति प्रजाति पाई जाती है। उसका आहार की तरह उपयोग हो सकता है। गुफाओं में शीत अधिक न होने से उसमें बिना वस्त्र के भी रहा जा सकता है। अथवा वह कार्य भोजपत्र जैसी कोमल लम्बी छालों से लिया जा सकता है। इस प्रकार के आश्रय उन्हें इसलिए बनाने पड़ते हैं कि साथी सहयोगियों से जब भी आदान–प्रदान करना पड़े तो उसके लिए आवश्यक स्थूलता अपनाई जा सके। प्रत्यक्ष शरीर धारण किया जाय, तो उसके लिए निर्वाह की आवश्यक साधन–सामग्री मिल सके। जब स्थूल स्थिति में जिस जगह निर्वाह हो सकता है, वहाँ सूक्ष्म स्थिति में बने रहना तो और भी अधिक सरल होना चाहिए।

कुछ समय पूर्व देवात्मा हिमालय के यातायात वाले स्थानों के समीप ही गुफाओं में ऐसी आत्माएँ रहा करती थीं। तब यात्रियों की धूमधाम नहीं थी। मार्ग कच्चे और अगम्य थे। इसलिए दुस्साहसी आत्मवान् ही उस क्षेत्र की यात्रा पर सिर से कफन बाँधकर चलने जैसी मनोभूमि बनाकर निकलते थे। पर अब वैसा बिलकुल भी नहीं है। बसावट बढ़ती जा रही है, मार्ग बनते जा रहे हैं। वाहन निकलते हैं। यात्रियों की संख्या हर वर्ष कई गुनी हो जाती है। इस सब के कारण वातावरण में कोलाहल तो बढ़ता ही है, साधारण स्तर के व्यक्तियों का चिन्तन, चरित्र भी उस क्षेत्र को प्रभावित करता है। साधनारत सिद्ध पुरुषों को उसमें घुटन

अनुभव होती है। फलतः वे उन स्थानों को छोड़कर सघन वनों में ऊँचे पर्वतों में इसलिए चले जाते हैं कि उन्हें मानव संकुल से उत्पन्न असुविधा का सामना न करना पड़े। अब यदि उनकी उपस्थिति का पता चल सके तो खोजी को ऐसे क्षेत्रों में पहुँचना पड़ेगा, जो सर्वसुलभ नहीं हैं। इस कारण अब वह दूरी बहुत बढ़ गई हैं जिसको सरलतापूर्वक पार किया जा सकता था और सिद्ध पुरुषों से संपर्क सध सकता था। खोजी वर्ग के लोग भी अपनी जीवट और तितीक्षा की दृष्टि से बहुत दुर्बल रहने लगे हैं। भौतिक लाभ के लिए सिद्ध पुरुषों का सम्पर्क कुछ विशेष लाभदायक नहीं होता; आत्मिक प्रगति की अभिलाषा अब किन्हीं बिरलों में ही देखी जाती है। ऐसी दशा में उन्हें आपस में मिलाने वाले आधार ही एक–दूसरे से प्रायः विपरीत हो जाने पर दोनों ओर से ऐसे प्रयत्न नहीं होते कि सामान्य साधकों और सिद्ध पुरुषों में पारस्परिक सम्बन्ध बने। दर्शन एवं परामर्श सम्भव हो। सिद्ध पुरुष परमार्थ प्रयोजनों के लिए उपयुक्त उच्चस्तरीय आत्माओं को तलाशते हैं। जबकि कौतुक–कौतूहल देखने की मनोभूमि वालों को मुफ्त के ऐसे वरदान–अनुदान चाहिए जो उन्हें सम्पन्न, समृद्ध, युवक, यशस्वी, अधिकारी, विजयी जैसी लौकिक सफलतायें मात्र दर्शन नमन के बदले दें या दिला सकें। अन्तर बहुत बड़ा हो गया है। यही कारण है कि पुरातन काल में साधकों और सिद्धों के जो सुयोग बनते थे वे सब असम्भव स्तर के बन गये हैं। आत्मश्लाघा से प्रेरित अपनी शेखी बघारकर दूसरों को चकित करने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले कुचक्री ही सिद्ध दर्शन और अनुग्रह पाने की किम्बदन्तियाँ गढ़ते और मन–मोदक झाड़कर जी बहलाते रहते हैं।

# हिम क्षेत्र की रहस्यमयी दिव्य सम्पदाएँ

हिमालय बहुत विस्तृत है। उसके अध्यात्म विशेषताओं से सम्पन्न भाग को देवात्मा कहते हैं। वह बहुत छोटा है। यमुनोत्तरी से आरम्भ होता है और कैलाश शिखर तक चला जाता है। इसकी ऊँचाई समुद्र तल से दस हजार फुट से लेकर बीस हजार फुट तक की समझी जा सकती है। शेष भाग वन, पर्वत, वनस्पति, नदी, नद आदि से भरा है। उसमें जहाँ कृषि संभव है, जल की सुविधा है, तापमान सह्य है, वहाँ उस क्षेत्र में रहने के अभ्यासी टिके रहते हैं और निर्वाह क्रम चलाते रहते हैं। उत्तरी ध्रुव में एस्किमो जाति के लोग रहते हैं। वे मांसाहार से पेट भरते हैं। बड़ी मछलियों की चमड़ी से रहने के लिए तम्बू बनाते हैं। मछली की चर्बी से प्रकाश जलाते हैं। शिकार पकड़ने, उसे काटने, भूनने के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें भी एकत्रित करके काम चलाते रहते हैं। कुत्ते और हिरन उनके कामों में हाथ बँटाते हैं।

दक्षिण ध्रुव में मनुष्य या पशु तो नहीं रहते, पर वहाँ पेन्गुइन जाति के दो पैरों के सहारे चलने वाले पक्षी पाये जाते हैं। टिड्डे स्तर के चींटे भी होते हैं। इन ध्रुव प्रदेशों में मैदानी इलाकों में रहने वाले लोगों का निर्वाह असंभव जैसा लगता है, पर जो अभ्यस्त हैं वे चिर पुरातनकाल से रहते और वंशवृद्धि करते चले आ रहे हैं। इसका निष्कर्ष यही निकलता है कि प्राणी किसी भी परिस्थिति में रहने के लिए अपने को ढाल सकता है। प्रकृति उसके लिए आवश्यक सुविधा–साधन भी जुटा देती है। घोर शीत वाले हिमाच्छादित प्रदेशों में भी कुछ प्रकार के जीव पाये जाते हैं। श्वेत भालू, श्वेत विलाव, श्वेत पक्षी, श्वेत कछुए एक प्रकार से काई को ही अपना आहार बना लेते हैं। इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली चट्टानी गुफाओं के नीचे वे बस जाते हैं और समीपवर्ती क्षेत्र से ही अपना

आहार प्राप्त कर लेते हैं। ऊँचाई पर पाये जाने वाले हिरन और भेड़ें उस वर्ग के लिए भोजन की आवश्यकता पूरी करते रहते हैं, जिन्हें मांसाहार पचता है।

यह हिमाच्छादित प्रदेशों के निवासियों के निर्वाह की चर्चा हुई। अब देखना यह है कि महत्त्वाकांक्षी मनुष्य भौतिक दृष्टि से उस क्षेत्र में जाकर क्या खोज और क्या पा सकता है ? इस प्रयोजन के लिये बहुत ऊँचाई तक जाने का मोह छोड़ना होगा। वहाँ पहुँचना अत्यन्त मँहगा भी है और कष्ट साध्य भी। जिनने कैलाश, मानसरोवर की यात्रा की है, जिन्होंने गंगोत्री और बद्रीनाथ का मध्यवर्ती मार्ग पैदल चलकर पार किया है, वे जानते हैं कि इस प्रकार के प्रयास कितने खर्चीले होते हैं। जिनके सामने आध्यात्मिक लक्ष्य है, उनकी बात दूसरी है, पर जिनका दृष्टिकोण विशुद्ध भौतिक है, वे इस प्रकार के पचड़े में पड़कर अपनी सुख–सुविधा वाली जिन्दगी में क्यों जोखिम खड़ा करेंगे। अध्यात्मवादियों के अतिरिक्त दूसरा वर्ग शोधकर्त्ता वैज्ञानिकों का आता है। वे भी अपनी गुरुता सिद्ध करने, कीर्तिमान स्थापित करने और कुछ ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए समर्पित रहते हैं, जो पीछे वालों के लिए उपयोगी बन सकें, सराही जाती रहें।

हिमालय इस दृष्टि से भी खोजने योग्य है। जब उत्तरी ध्रुव जैसे क्षेत्र शोधकर्त्ताओं के लिए आकर्षण का केन्द्र बन सकते हैं, उन्हें वहाँ की परिस्थिति जानने के लिए कठिन यात्राओं के लिए प्रोत्साहित करते हैं, तो कोई कारण नहीं कि हिमालय की भौतिक सम्पदा को खोज निकालने के लिए शोधकर्त्ताओं का उत्साह क्यों न जगे।

जहाँ प्रकृति का दोहन होता रहता है, वे क्षेत्र दुर्बल पड़ जाते हैं; किन्तु जहाँ की मौलिकता अक्षुण्ण रही है, वहाँ खोज के लिए बहुत कुछ पाया जा सकता है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि नये खोजे क्षेत्रों में भूमि–उर्वरता, खनिज आदि का इतना बड़ा वैभव प्राप्त हुआ है कि वहाँ के निवासी कुछ ही समय में समृद्ध हो गए। हिमालय का क्षेत्र भी

ऐसा है, जिसे अति प्राचीनकाल में ही खोजा गया था। उन दिनों न वहाँ पाई जाने वाली समृद्धि की कल्पना की गई, न हाथ डाला गया। फलतः वह क्षेत्र एक प्रकार से अछूता ही पड़ा है। समुद्र किनारे पर पड़े हुए सीप–घोंघों को जिस प्रकार बालक बीन लेते हैं, उसी प्रकार हिमालय से अनायास ही मिलने वाले लाभों को ही पर्याप्त मानकर सन्तोष किया जाता रहा है। यदि समुद्र की गहराई में उतरकर मोती बीनने वाले का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके, तो वह प्रदेश कम विभूतियों से भरा–पूरा न मिलेगा।

हिम खण्ड पर्वत धरती की ऊपरी सतह पर है, उसके नीचे सामान्य भूमि है। इस निचली सतह से कभी–कभी गरम गैसें ऊपर आती हैं और पानी के साथ मिलकर खौलते तप्त कुण्डों का सृजन करती हैं। इनके स्रोत खोजे जा सकें, तो असाधारण मात्रा में ऐसी ऊर्जा हस्तगत हो सकती है, जो अनादिकाल से सुरक्षित हैं, जिसका दोहन कभी भी नहीं हुआ। पत्थरों में ऐसे तत्त्व भरे पड़े हैं, जो बहुमूल्य रसायनों के रूप में बाहर निकाले जा सकते हैं, जिनका अति महत्त्वपूर्ण उपयोग हो सकता है। शिलाजीत उन्हीं में से एक है, जिसे असाधारण रूप से बलवर्धक माना जा सकता है। हिमालय से आने वाली नदियों की बालू में सोने–चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं का सम्मिश्रण पाया गया है। यदि उनके उद्‌गम खोजे जा सकें तो समतल भूमि में पाई जाने वाली धातु खदानों से अधिक मूल्यवान् सम्पदा हाथ लग सकती है। कहीं–कहीं यूरेनियम जैसी धातुओं का सम्मिश्रण भी रेत में पाया गया है। कुछ सरिताएँ ऐसी हैं, जिनके पानी में ऐसे तत्त्व मिले हुए हैं, जो उन्हें प्रभावशाली औषधियों के समतुल्य बनाते हैं। यह रसायन उन क्षेत्रों की परतों में पाये जा सकते हैं, जहाँ से कि वह टकराती हुई प्रवाहित होती हैं।

कस्तूरी हिरन हिमालय की ऊँचाइयों में पाये जाते हैं। बारहसिंगे के सींग अपने आप में औषधीय विशेषताओं से भरे–पूरे हैं। चँवरी हिरन की

पूँछ न केवल सुन्दर होती है, वरन् उसके शरीर पर ढुलने से प्रसुप्त ऊर्जा में उभार आता है। इसी प्रकार अन्यान्य जीव–जन्तु भी असाधारण विशेषताओं से भरे होते हैं। वातावरण का प्रभाव प्राणियों पर भी आता है और वे इस योग्य बनते हैं कि मनुष्य को शारीरिक–मानसिक स्तर के विशेष अनुदान दे सके। दुर्भाग्य इसी बात का है कि इन प्राणियों का अभिवर्धन करके उनके सम्पर्क से लाभ नहीं उठाया जा रहा है, वरन् मांस के लिए उनका वध करके महती संभावनाओं से दिनानुदिन वंचित होता चला जा रहा है।

हिमालय के वृक्षों की अपनी विशेषताएँ हैं। उनकी लकड़ियों में तेल की इतनी प्रचुर मात्रा पाई जाती है कि उनकी गीली लकड़ी को भी जलाया और ताप का लाभ उठाया जा सके। चीड़, देवदारु के तनों से निकलने वाला रस 'बिरोज' के रूप में बाजार में बिकता है और अनेक रासायनिक प्रयोजनों के लिए काम आता है। अन्य पेड़ भी अपने–अपने ढंग के गोंद देते हैं। उनके पुष्प तथा फल औषधियों की तरह काम में लाये जाते हैं। अन्न तो प्रचुर परिमाण में हिमालय की ऊबड़–खाबड़ भूमि पर पैदा नहीं होता, पर उसकी पूर्ति कर सकने वाले कई प्रकार के कन्द अनायास ही उपलब्ध होते हैं। उनकी क्षमता अन्न की तुलना में कम नहीं अधिक ही होती है। कितने ही शाक अलग–अलग क्षेत्रों में अलग आकृति–प्रकृति के ऐसे पाये जाते हैं, जिन्हें शाक–भाजियों के समतुल्य गुणकारी पाया जाता है। पत्तियों के रूप में पाये जाने पर भी उनमें पोषक तत्त्व उनसे कम नहीं होते, जैसे कि समतल भूमि के शाकों और फलों में होते हैं।

भोज पत्र एक बहु उद्देश्यीय वृक्ष है। उसके बल्कल का उपयोग वस्त्रों के रूप में, बिस्तर के रूप में एवं झोपड़ी आच्छादन के रूप में हो सकता है। उसके पत्र कागज के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। भोज–पत्र में उभरने वाली गाँठों का काढ़ा बनाकर पीने से कड़क चाय की आवश्यकता पूरी होती है।

औषधियों का तो हिमालय को भण्डार ही समझना चाहिए। ऊँचाई पर पाये जाने वाली वनौषधियाँ असामान्य गुणों से भरपूर पाई गईं हैं। उसी जाति की वनौषधियाँ यदि मैदानी इलाके के गरम वातावरण में लगाई जाएँ, तो उनमें वे विशेषताएँ नहीं पाई जाएँगी जो ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में उगने पर होती हैं। चट्टानों पर हवा के द्वारा मिट्टी की हलकी परत छोड़ दी जाती है। उसी में जड़ी–बूटियाँ अपने लिए जड़ें फैलाने का स्थान बना लेती हैं। वायुमण्डल से मिलने वाले खाद–पानी से अपना पोषण करती हैं। ऐसी दशा में उनका विशिष्टताओं से सम्पन्न होना स्वाभाविक है। ऊँचाई पर होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो पाता। कोई उन्हें लाने के लिए नहीं पहुँचता। यदि मार्ग बना लिया जाए और उन्हें बोने–बटोरने का व्यवस्थित क्रम चलाया जाए, तो मनुष्य के हाथ अमृतोपम औषधियों का भंडार हाथ लग सकता है। साथ ही अति लाभदायक उपयोग के रूप में भी विकसित किया जा सकता है।

हिमाच्छादित प्रदेशों में कम ऊँचाई वाले ऐसे भी अनेक क्षेत्र हैं, जहाँ शीत ऋतु में हलकी बर्फ जमती है। गर्मी आने पर वह पिघल भी जाती है। पिघलने पर उर्वरा भूमि निकल आती है। इस प्रकार भूमि के उभर आने का समय श्रावण–भाद्रपद के दो महीने विशेष रूप में होते हैं। किन्हीं क्षेत्रों में थोड़ा आगा–पीछा भी रहता है। इन्हीं दो महीनों में उस भूमि में दबी वनस्पतियाँ अचानक उभर आती हैं। अंकुरित और पल्लवित तो वे पहले से भी किसी रूप में बनी रहती हैं, पर गर्मी पाते ही वसन्त काल की तरह द्रुतगति से विकसित होती हैं। इन दो महीनों में ही उनका जीवनकाल पूरा हो जाता है। इस अवधि में पूरी तरह फूल–फल लेती हैं। मध्यम ऊँचाई के हिम पर्वतों में दो महीने का वसन्त रहता है। उनमें विशेषतया छोटे–बड़े आकार की जड़ी–बूटियाँ फूलती हैं। दूर–दूर तक फूलदार मखमली गलीचे जैसे बिछे दिखाई पड़ते हैं। उस नयनाभिराम दृश्य को देखते–देखते मन नहीं भरता। प्रकृति का यह अद्भुत कला–कौशल दर्शक को भाव–विभोर कर देता है। ऐसे फूलों की घाटी देवात्मा

हिमालय क्षेत्र में दर्जनों हैं, उनमें से हेमकुण्ड वाली अधिक प्रख्यात है। केदारनाथ के ऊपर वाला क्षेत्र भी ऐसा ही है। फूलने के बाद यह वनौषधियाँ फलती हैं। पकने पर बने हुए बीज धरती पर बिखर जाते हैं। इसके बाद बर्फ पड़ने लगती है। बीज उसके नीचे दब जाते हैं। प्रायः आठ महीने उपरान्त बर्फ पिघलने पर यह जमीन फिर खुलासा होती है। इस बीच में बीज भूमि में अपनी जड़ें जमा लेते हैं, अंकुरित हो लेते हैं। धूप के दर्शन होते ही वे तेजी से बढ़ने, पल्लवित होने और फूलने–फलने लगते हैं। यह उनके दृश्य स्वरूप की चर्चा हुई। इन वनस्पतियों के गुणों की नये सिरे से खोज होने की आवश्यकता है। इन्हें पुष्प–वाटिका के समतुल्य नहीं माना जाना चाहिए, वरन् समझना चाहिए कि इनमें एक से एक बढ़े–चढ़े गुणों वाली–शारीरिक और मानसिक रोगों का शमन करने वाली, जीवन शक्ति एवं दीर्घ आयुष्य प्रदान करने वाली वनस्पतियाँ हैं। चरक युग में तत्कालीन वनौषधियों की खोज हुई थी। आयुर्वेद का औषधि खण्ड उसी आधार पर बना था। उस बात को अब लम्बा समय बीत गया। कितनी ही लुप्त हो गयीं और कितनी ही प्रजातियाँ नये सिरे से उत्पन्न हो गयीं। यदि उनका विश्लेषण, वर्गीकरण, परीक्षण किया जाय तो नये सिरे से फिर आधुनिक औषधि शास्त्र विनिर्मित हो सकता है। इस क्षेत्र की कितनी ही वनस्पतियाँ अभी भी प्रख्यात; किन्तु दुर्लभ हैं। रात्रि को प्रकाश देने वाली ज्योतिष्मती, संजीवनी, रुन्दती, सोमवल्ली आदि को देव वर्ग का माना जाता है। इनमें मृत–मूर्च्छितों को नव–जीवन प्रदान करने की शक्ति मानी जाती है। वृद्ध च्यवन ऋषि ने इन्हीं के आधार पर जराजीर्ण वृद्धावस्था को नवयौवन में परिवर्तित करके कायाकल्प जैसा आनन्द उठाया।

# दैवी सहायता मात्र पुण्य प्रयोजनों के लिए

मादक द्रव्यों की भाँति सम्पदाओं, सफलताओं का भी एक नशा होता है। जिन्हें असाधारण रूप से बल, वैभव, पद, गौरव आदि मिलता है, वे अहंता की मादकता से उन्मत्त जैसे हो जाते हैं। मर्यादाओं को तोड़ने, वर्जनाओं की उपेक्षा करने और अपराधी स्तर के उद्धत आचरणों में निरत होने लगते हैं। अनुकरण की छूत एक से दूसरे को लगती है। अनाचार उत्पीड़न की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रतिशोध पर प्रतिशोध का क्रम चल पड़ता है। नियति भी उद्धतों को प्रताड़ित किये बिना चैन से कब बैठती है। मनःस्थिति में घुसी हुई विषाक्तता परिस्थितियों में विग्रह–विद्रोह के तत्त्व उभारती है। संघर्ष खड़े होते हैं साथ ही प्रकृति भी अनेकानेक प्रतिकूलताएँ, विपत्तियाँ, विभीषिकाएँ बरसाने लगती हैं। अशान्ति के अनेकानेक विस्फोट फूटने लगते हैं। वातावरण संकटों, असंतोषों, अभावों से भर जाता है।

मनुष्य यों चाहे तो चिन्तन, चरित्र, व्यवहार की उत्कृष्टता बनाये रहकर सुख–शान्ति का माहौल बनाए रह सकता है। स्नेह सहयोग की नीति अपनाकर हँसती–हँसाती जिन्दगी जी सकता है। जितने साधन उपलब्ध हैं उन्हें मिल बाँटकर खाते हुए प्रगति और प्रसन्नता भरपूर मात्रा में उपलब्ध कर सकता है। पर वह ऐसा करता नहीं है। क्षुद्रता जब भी साधन सम्पन्न होती है तभी विष उगलती है। कुमार्ग अपनाने का प्रतिफल विपत्तियों और विग्रहों के रूप में ही सामने आ सकता है।

यही सब बार–बार होता रहता है। अनैतिकता की अराजकता बार–बार उभरती रहती है। समुद्र में ज्वार और पवन में तूफान आने की तरह जब मानवी क्रिया–कलापों में अनैतिकता की अराजकता उभरती

है, तो विश्व संतुलन बिगड़ने लगता है। यदि वह उसी रूप में चलता रहे तो महाविनाश जैसे विग्रह खड़े होते हैं। इनकी रोकथाम आवश्यक है। असंतुलन को संतुलन में बदलने से ही बात बनती है। उफानों को रोकने के लिए चूल्हे की जलती अग्नि बुझानी पड़ती है और उफनते झागों में पानी डालना पड़ता है। इसकी व्यवस्था भी नियंता ने बना रखी है। संतुलन की जिम्मेदारी देवात्माओं सिद्ध–पुरुषों को सौंपी है। उनकी विशिष्टता का उपयोग इसी में है कि सृष्टि के बिगड़ने वाले संतुलन को समय–समय पर नियन्त्रित करते रहें। प्रगति के मार्ग में अड़े हुए अवरोधों को हटाते रहें। यह एक प्रकार से स्रष्टा का हाथ बटाना है। विश्व उद्यान के मालियों को यही करना पड़ता है। वे उसे समुन्नत बनाने के लिए खाद पानी की व्यवस्था करते, खरपतवारों को उखाड़ते और उजाड़ने वाले तत्त्वों से निपटते हैं। देवात्माओं की शक्ति–सामर्थ्य इसी प्रयोजन में निरत रहती है। वे अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन वाली ईश्वरीय इच्छा को पूर्ण करने में अपनी सत्ता और क्षमता को होमते रहते हैं। गिरों को उठाते, उठने वालों को बढ़ाते, भटकों को राह दिखाते और पीड़ितों की सहायता करते हैं। आत्मा की गरिमा इसी में है कि वह अपना दुलार बिखेरे और वैभव बाँटे। अनीति से निपटे नीति को बढ़ाए और बिगड़े हुए संतुलन को बनाए। देवात्माएँ यही करती रहती हैं। अपनी अपूर्णता दूर करने के लिए योग तप का आश्रय लिया जाता है। साथ ही जो कुछ उच्चस्तरीय वैभव प्राप्त होता है, उसे सत्प्रवृत्ति संवर्धन में लगाया जाता है। सिद्ध पुरुषों का यही एक मात्र क्रिया–कलाप रहता है। वे बादलों की तरह सुसम्पन्न बनते हैं और अपनी विभूतियों को आवश्यक प्रयोजनों के लिए भूखण्डों पर बरसा देते हैं।

सिद्ध पुरुष इसी के लिए अवसर की तलाश में रहते हैं। जहाँ अपने सहयोग की आवश्यकता समझते हैं, वहाँ उसे बिना माँगे अहैतुकी कृपा के रूप में मुक्तहस्त से बिखेर देते हैं। साथ ही ऐसे सुसंस्कारी व्यक्तियों को भी ढूँढ़ते रहते हैं, जिन्हें सामान्य से असामान्य बनाकर अपने ऊपर

लदे हुए दायित्व में भागीदार बनाने के लिए सहयोगी स्तर तक विकसित किया जा सके। साधक ऐसे ही व्यक्तित्वों को कहते हैं। पुण्य परमार्थ की उमंगों को उभारना ही साधना है। साधकों को सिद्धों की और सिद्धों को साधकों की आवश्यकता पड़ती है। दोनों एक दूसरे को खोजते हैं। संयोग मिल जाने पर अन्धे–पंगे का संयोग बनाकर अपूर्णता को पूर्णता में बदलते हैं।

सिद्ध पुरुष सूक्ष्मशक्ति प्रधान होते हैं। उनका सूक्ष्म शरीर होता है। साधक की स्थिति स्थूल शरीर में समाहित होती है। स्थूल की वरिष्ठता सूक्ष्म के संयोग से प्राप्त होती है। काया की वरिष्ठता प्राण बाहुल्य में है। साधक को काया और सिद्ध को प्राण कहा जा सकता है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एकाकी सिद्ध मात्र सूक्ष्म होने से प्रत्यक्ष हलचलों के संयोजन में असमर्थ रहता है। इसी प्रकार एकाकी साधक प्राणशक्ति की न्यूनता के कारण वैसा कुछ कर नहीं पाता; जिसे अलौकिक या चमत्कार कहा जा सके, ऐसा बन पड़ना दोनों के संयोग से ही संभव होता है। इसलिए सिद्ध, साधकों को और साधक, सिद्धों को तलाशते देखे गये हैं। जब संयोग मिल जाता है, तो दोनों पक्ष कृतकृत्य हो जाते हैं। दो पहियों की गाड़ी सरपट दौड़ने लगती है।

सिद्ध पुरुषों का प्रधान कार्य सृष्टि का संतुलन बनाये रहना है। इसके लिए उन्हीं साथी सहयोगियों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए उत्सुकता पूर्वक सत्पात्र साधकों को तलाशते रहते हैं। साधकों के लिए अपने बलबूते अधिक कुछ कर सकना संभव नहीं होता। बालक को अभिभावक का, अध्यापक का सहयोग चाहिए। इसके बिना एकाकी निर्वाह या विकास बन नहीं पड़ता। साधक भी उच्चस्तरीय उत्कर्ष के लिए समर्थ सहयोगी की आवश्यकता अनुभव करता और उसे खोजता है।

साधक और सिद्ध आदर्श मार्ग के दो पथिक हैं। दोनों ही दो बैलों की तरह एक जुए में जुतते हैं, जिसका ढाँचा विश्व संतुलन का परिवहन

करते रहना है। एक दूसरे का सहयोग पाकर कृतार्थ भी होते हैं और सच्चे मन से सहयोग भी करते हैं। पहुँचना तो दोनों को एक ही गंतव्य पर है।

इसके विपरीत एक ऐसी अड़चन भी है जो दोनों के बीच कभी सच्चा सहयोग बनने ही नहीं देती। वह है ललक–लिप्सा, कामना, स्वार्थपरता। देखा गया है कि तथाकथित अध्यात्मवादियों में से अधिकांश ऐसे होते हैं, जो सम्पन्नता–सफलता के भौतिक प्रयोजनों के लिये किन्हीं देवताओं अथवा देवपुरुषों का श्रम उपार्जित वर्चस्व मुफ्त में ही लूटना चाहते हैं। इसके लिए अपने को भक्त सिद्ध करने का मुखौटा लगाते हैं। आकुल–व्याकुल फिरते हैं।

भक्त वेषधारी जो भी सोचते हों, पर देवात्माओं की अन्तर्दृष्टि आर–पार जाने वाली होती है। उन्हें वस्तुस्थिति समझने में कभी भ्रम नहीं होता। उन्हें किसी बहाने फुसलाया नहीं जा सकता।

जिसके नाम की चिट्ठी होती है पोस्टमैन उसका घर तलाशता हुआ स्वयं पहुँच जाता है। खिले फूल की गंध पाकर भौंरे, तितलियाँ, मधुमक्खियाँ स्वयं ही दौड़ जाती हैं। इसी प्रकार जिन आत्माओं में उदात्त चिन्तन, आदर्श चरित्र, स्नेह–सद्भाव का विकसित स्वरूप दीख पड़ता है, उन्हें सिद्ध पुरुष अपने लिए उपयोगी मान लेते हैं और उन्हें समीप लाने के लिए, अर्जित विभूतियों द्वारा निहाल करने के लिए स्वयं ही उन्हें खोज लेते हैं, उनके घर पर जा पहुँचते हैं। विवेकानन्द के घर रामकृष्ण परमहंस स्वयं पहुँचे थे। शिवाजी से समर्थ गुरु रामदास ने किसी बहाने स्वयं सम्पर्क बनाया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त का सुयोग भी इसी प्रकार बना। ऐसे सुयोग घर जाकर भी बनायें जा सकते हैं और अपने आकर्षण से कहीं बाहर बुलाकर उनसे सम्पर्क साधा जा सकता है। हर हालत में इसमें परख, चयन, आमन्त्रण, आकर्षण समर्थ शक्तियों का ही होता है। अनुग्रहकर्त्ता तो निमित्त मात्र होते हैं।

कई कौतूहल को कसौटी मानकर उनकी तलाश में निकलते हैं और

कामना पूरी करने के लिए उनका अनुग्रह चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि कोई निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए किसी पर किसलिए अनुदानों की वर्षा करेगा ? परमार्थ के लिए तो उदारचेत्ता बड़े–बड़े दान दे देते हैं। हरिश्चन्द्र, दधीचि, भामाशाह आदि ने जब उच्च प्रयोजन सामने खड़े देखे तो उनकी झोली भर दी। पर हट्टे–कट्टे भिखारी जब कोई बहाना बनाकर भीख माँगने निकलते हैं, तो उन्हें दुत्कार ही मिलती है। अध्यात्म क्षेत्र में समर्थों के विशिष्ट अनुदान सत्पात्रों को मिलने की परम्परा रही है। लालची, स्वार्थी जब मतलब गाँठने के लिए भीख माँगने या जेब काटने के लिए अपने को अध्यात्मवादी लबादे से लपेटते हैं, तो उनकी पोल तत्काल खुल जाती है। ऐसे लोगों को निराश होकर ही वापस लौटना पड़ता है।

जिन लोगों ने इस प्रकार की खोज में लम्बी दौड़–धूप की है, वे निराश होने पर अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए मनगढ़ंत कहानियाँ बना लेते हैं और परिचित लोगों के आगे सिद्धों से भेंट के लम्बे किस्से सुनाते हैं। इस कौतुक को सुनने से किन्हीं का मनोरंजन तो हो सकता है, आरम्भ में कुछ समय के लिए असमंजस युक्त विश्वास भी कर लेता है, पर वस्तुस्थिति प्रकट होने में देर नहीं लगती। जब व्यक्तित्व और व्यवहार में किन्हीं उच्चस्तरीय गतिविधियों का समावेश नहीं दीखता, तो वे समझ लेते हैं– कथन में प्रपंच मात्र था। पारस को छूकर लोहा सोना बन जाता है। स्वाँति की बूँद से सम्पर्क होने पर सीप मोती बन जाती है। चन्दन वृक्ष के समीप उगने वाले झाड़–झंखाड़ महकने लगते हैं, तो कोई कारण नहीं कि सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा पाने वाला घटिया जीवन जीता रहे और बचकानी प्रवृत्तियों के बाड़े में कैद रहे। गाँधी की आत्मीयता पाकर विनोबा–विनोबा बन गये थे। सिद्धपुरुषों का उद्देश्य किन्हीं लालची अहंकारी लोगों की कामनाएँ पूरी करते फिरना नहीं है। न वे इसके लिए अपनी तपस्या को कूड़े के ढेर पर बिखेरते हैं। उनकी स्वयं की सत्ता उत्कृष्टता का परिपोषण करने के लिए समर्पित हुई, तो वे अपने बहुमूल्य

तप का समापन किसी को कौतूहल दिखाने के लिए– किन्हीं की ललक–लिप्साएँ पूरी करने के लिए क्यों खर्च करेंगे ? इस नग्न सत्य को ऐसे हर व्यक्ति को भली प्रकार समझ लेना चाहिए, जो सिद्धपुरुषों को खोजने और उनसे लाभ उठाने के लिए जहाँ–तहाँ भटकते हैं। उन्हें वरदान अनुग्रह प्राप्त करना तो दूर, दर्शन तक का लाभ नहीं मिलता। भले ही उनकी मौजूदगी समीपवर्ती क्षेत्र में ही क्यों न हो !

कभी–कभी ऐसा होता देखा गया है– एक ठग को दूसरा बड़ा ठग अपने चंगुल में फँसा लेता है और पकड़े हुए शिकार को झोली में डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। प्रेत–पिशाचों में से, यक्ष गंधर्वों में से कुछ ऐसे मनचले होते हैं, जो इन प्रपंची लोगों की मनोभूमि को ताड़ लेते हैं और उन्हें फँसाकर मनमाने कृत्य कराने के लिए वाहन जैसा उपयोग करते हैं। यह वर्ग भी सूक्ष्म शरीरधारी होता है। निकृष्ट वर्ग में गिने जाने पर भी वेष बदलकर किसी भी रूप में प्रकट होने की कला में अभ्यस्त होता है। उनके लिए सिद्ध पुरुषों जैसा रूप बना लेने में भी कठिनाई नहीं होती। मूर्खों के साथ वे धूर्तों जैसा व्यवहार करते हैं। कौतूहल दिखाकर उन्हें मन्त्र मुग्ध कर लेते हैं और सम्मोहित कर उन्हें उँगली के इशारे पर कठपुतली की तरह नचाते हैं। इस प्रकार जकड़े–पकड़े गये लोग भी अपने को सिद्धपुरुषों के साथ सम्पर्क होने की मान्यता में जकड़ जाते हैं और उनकी इच्छानुसार उचित–अनुचित का विचार किये बिना हेय कृत्य करने लगते हैं। अघोरी, कापालिक, तांत्रिक स्तर के लोग इसी प्रकार के कुचक्र में फँसे हुए होते हैं। सन्त का जीवन आदर्शवादी और परमार्थ परायण होना चाहिए। पात्रता और प्रामाणिकता उनकी महानता को सिद्ध करने वाली कसौटियाँ सही सिद्ध करती दीख पड़नी चाहिए। पर इसके विपरीत जब दीख पड़ता है कि कोई संत वेष धारण करके भी अभक्ष्य खाता, अपेय पीता, अपवित्र उपकरण धारण करता और कुकर्मों में निरत रहता है, तो समझा जाना चाहिए कि वह किसी प्रेत–पिशाच का वाहन बन गया या किसी बेतालयोनि ने इसे अपने फंदे

में फँसा लिया। ऐसे लोगों की गतिविधियाँ मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि हेयकृत्यों में संलग्न रहती हैं। वे इसी प्रकार की चर्चाएँ एवं चेष्टाएँ करते हैं। नाम तो देवता–सिद्ध होने जैसा लेते हैं, पर वस्तुतः वे किन्हीं प्रेत पिशाचों के वशवर्ती होते हैं। वे ही विलक्षण वस्तुएँ लाकर दिखा देने, कौतूहल प्रकट करने जैसी आश्चर्य चकित करने वाले कृत्य करते देखे जाते हैं। इन प्रदर्शनों का उद्देश्य मात्र चकित व्यक्तियों को सम्मोहन जाल में फँसा लेना मात्र होता है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा